श्रीसनाढ्यादर्श ग्रन्थ-माला का प्रथम पुष्प

सुकवि-सरोज

(प्रथम भाग)

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥

(कश्चित्कविः)

सम्पादक

पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी

प्रकाशक

"श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रन्थ-माला" कालपी

KALPI U P
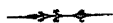
प्रथमावृत्ति 1000 | व्यास–पूर्णिमा सं० १९८४ वि० | मूल्य ।।।) सजिल्द १)

PRINTED BY P RAM NARAYAN PATHAK AT THE SHRI RADHEY SHYAM PRESS
BAREILLY AND PUBLISHED BY PT G S DWIVEDI AT THE SHRI
SANADHAYADARSHA GRANTH MALA OFFICE KALPI

सुकवि सरोज

श्री० प० रामगोपाल जी मिश्र

बी० एम० सी० एम० आर० ए० एस०, एफ० टी० एस०,

डिपुटी कलेक्टर, उरई।

समर्पण

साहित्य-सेवी, जातिहितैषी, स्वनाम-धन्य

श्री० पं० रामगोपालजी मिश्र

बी० एस-सी०, एम० आर० ए० एस०, एफ़० टी० एस०

डिपुटी कलेक्टर

उरई

श्रद्धेय बन्धु !

जीवनचरित्र, पूज्य पूर्वजो के प्रस्तुत हैं,
श्रद्धायुत अर्पित हैं, मान्य बन्धु ! लीजिए ।
सुरसरि सुयश त्यों, भव्य भाव भानुजा है,
कविता सरस्वती, त्रिवेणी-जल पीजिए ॥
'शङ्कर' अकिंचन का, श्रम है सफल तभी,
भेंट अंगीकार हो, प्रचार पूर्ण कीजिए ।
खोज किये रत्न बनैं, जाति के हिये के हार,
'सुकवि-सरोज' को, अपार ओज दीजिए ॥

आपका—
गौरीशङ्कर द्विवेदी

परिचय

काव्य–रस–रसिक प्रवीण मधुपो के लिए,

व्यंजनो से सज्जित नवीन प्रीति-भोज है ।

महाकवि 'केशव' 'बिहारी' और 'देव' आदि,

पण्डितो की प्रतिभा का परिपूर्ण ओज है ॥

चुने हुए और भी अनेकों सुमनो का सार,

"शङ्कर" ने श्रम कर लिया जिसे खोज है ।

अंश इतिहास का, विकास विप्र-वश का है,

परम प्रशंसनीय, 'सुकवि-सरोज' है ॥

'कवि-कुटीर'
कालपी
१४–७–१९२७

रसिकेन्द्र

विषय-सूची

सुकविसरोज

'कवि-नामावली'

—o—

भूल-संशोधन

(प्रेस की असावधानी के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह गई है, पाठकगण नीचे के अनुसार सुधार कर पढने की कृपा करें)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध (जो छपा है)	शुद्ध (जो होना चाहिए)
१२	३	सम्बन्य मे द्	सम्बन्ध मे दी
१५	२१	समाचार ''	समाचार कैसे
१७	१७	मु ल	मुग़ल
२०	१०	कशवदास	केशवदास
२१	८	रावण क	रावण के
२३	१५	केशव की	केशव का
२४	८	पार्वती	पारवती
२५	१६	शेष शोश पै	शेष शीश पर
२६	१३	बा र	बानर
३०	७	वस्तव	वास्तव
३०	१२	बात का	बात को
३२	२	भूमि म	भूमि मे
३५	१३	कपटी नर है	कपटी न रहै
४१	१६	बै।	बेर
४४	५	ववेकं	विवेक
४४	१४	के ैदास	केशौदास
४५	२१	द्विज ाजि	द्विजराजि
४७	१३	चारु च ः	चारु चंद
६१		ओप	ओर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध (जो छपा है)	शुद्ध (जो होना चाहिए)
६५	२१	हमासु	हमासु
७०	१८	सध,	साध,
७०	१६	दूध सधा	दूध सुधा
७१	७	सभो ज त्यो	सखी जन त्यो
७२	१७	सूरजमुखो चन्द्रमुखो	सुरजमुखी सो चन्द्रमुखी
७५	१	सेल्हो,	सेल्हो सजि
७६	१६	तपोभून	तपोभूमि
८०	६	आप सुकविताओ	आपकी, सुकविताओं
८३	२	विद्यामान	विद्यमान
८३	१६	ग्रंथ समाप्ति	ग्रंथ के समाप्त होने
१०७	१६	मिल थी	मिली थी
१०६	११	"वर्ष श्री सनाढ्य "	वर्ष "श्री सनाढ्य ."
१०६	१६	पाराशर ज	पाराशर जी,
११२	१६	हम तरन,तुम तारन	हम तरन,तुम तरन तारन
१२३	१७	कर पै पर तै	कर पै रप तैं
१२४	२	भागैरा	भागैरी
१२७	४	ह सिद्धान्त कौमुदो	भी सिद्धान्तकौमुदी
१२७	१२	प० शिव कुप्यार	प० शिवकुमार
१२८	१७	फ़िन्तु	किन्तु
१५६	१२	आदा	सादा
१६३	८	वै नविसराम	वैन विसराम
१६४	६	ढ़ॉप	ढॉपै
१६५	७	पूर्व कभूमंडल	पूर्ण कमंडल
१६६	१	जगजावन	जगजीवन
१६६	१०	प्रेभाकुलित	प्रेमाकुलित
१६६	१४	सद्म	सद्म

—०—

अन्त के सूचना-पृष्ठो मे

भूल-संशोधन

चौथ पृष्ठ म चतुथ पक्ति क बाद निम्न लिखित नाम और बढा लीजिए -

(६) श्री०पं० रामचरणलालजी बुधौलिया डाक्टर बलरामपुर स्टेट } १५ प्रतियो के लिये

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध (जो छपा है)	शुद्ध (जो होना चाहिए)
५	७	बिलघरे	बिल्थरे
७	२४	पं० परमानन्द मिश्र चोधरी हार्डीगज	श्री०पं०परमानन्दमिश्र चोधरी हार्डीगंज "प्रेमकुटीर" झाँसी

सूचना

विज्ञ पाठको !

यहाँ आप सब को यह सूचना दे देना भी अनुपयुक्त न होगा कि महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी, इनके बड़े भाई नन्ददास जी तथा गोस्वामी जी के गुरु श्री नरहरि जी भी सनाढ्य जाति ही के भूषण थे। इनके सम्बन्ध की कुछ बातो मे सशय रह जाने के कारण मैंने इन सुकवियो के जीवनचरित्र इस भाग मे सम्मिलित नही किए थे किन्तु अन्वेषण करते समय मुझे श्री० प०गोबिन्दवल्लभ जी शास्त्री सोरो के, गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध मे लिखे हुए लेख को देखने का सुअवसर मिला और उससे मेरी बहुत सी बातो का भ्रम-निवारण हो गया है। अत 'सरोज' के 'द्वितीय भाग' मे उपरोक्त सुकवियो के भी जीवनचरित्र आदि पाठकों को भेट करने का यत्न करूँगा।

—सम्पादक

भूमिका

अनुगन्तव्याः सन्तो
यद्यपि कथयन्ति नैकमप्यर्थम्
यास्तेषां स्वैरकथा
भवन्ति तान्येव शास्त्राणि ॥ १ ॥

माननीय सज्जनगण !

सभ्य ससार में जीती और जागती वही जाति मान जा सकती है जिसके अंदर जाति का गौरव बढ़ाने वाले अनेक गण्य मान्य सज्जन जन्म ले चुके हो, और जिसका इतिहास भी अन्य जातियो के समक्ष मे सर्वोत्तम सिद्ध हो चुका हो। यही इस विषय मे ऐतिहासिक तत्त्वान्वेषियो का मत है।

ससार मे आजकल जितनी जातियाँ देखने मे आती है उनमे सबसे प्राचीन तथा सर्वश्रेष्ठ सर्वमान्य एकमात्र ब्राह्मण जाति ही है। इसका प्रमाण वेदादि सत्य शास्त्रो मे लिखा हुआ उसका इतिहास है। ब्राह्मण तपोधन होते हैं। वेदो मे तप का दूसरा नाम "सन" है। इसीलिये वैदिक-काल मे ब्राह्मणो का

दूसरा नाम "सनाढ्य" था, यह बात वेदो के अन्वेषण करने पर अनायास ही सिद्ध होती है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे। १३। ४
भूतानां ब्रह्मा प्रथमो ह जज्ञे। २६। २२। २१
ब्रह्मा देवानां प्रथम सम्बभूव। १। १
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्। १। ३

यह प्रमाण क्रमश यजुर्वेद, अथर्ववेद, मुंडक और श्वेताश्वेतर के है। इनसे ससार मे सबसे प्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति निर्विवाद सिद्ध है। ब्रह्मा तपोधन होने के कारण सनाढ्य थे। इसीलिये –

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे।
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ॥२। ७। ५

ऐसा श्रीमद्भागवत मे उनके विषय मे लिखा है। इसका अर्थ इस प्रकार है। ब्रह्मा जी स्वय अपने श्रीमुख से कहते है कि मैंने अनेक लोको की सर्जनेच्छा से सबसे प्रथम तप किया, फिर मैं अपने तप से "चतु सन" बना। (आत्मा वै जायते पुत्र.) इस प्रमाण से ब्रह्मा ही रूपान्तर मे सनक–सनन्दन–सनातन–सनत्कुमार, इन चार रूपो मे अवतीर्ण हुए। तप.–प्रधान होने के कारण ब्रह्मा जी ने अपने मानस पुत्रो का नाम भी "सन" शब्द पर ही नियत किया। यूरोप में छपी हुई वैदिक शब्दसूची में "सन, सनक. सनज, सनत्, सनात्, सना" यह सभी शब्द मिलते हैं, जो कि ऋग्यजु-सामाथर्व इन चारों

वेदो के अनेक मन्त्रो मे पाए जाते है। इस विषय मे जिनको अधिक देखभाल करनी हो वे हमारा "सनाढ्य गौरवादर्श" पढ़े।

यहाँ तक हमने ब्रह्मा का सनाढ्यत्व और उनसे सनाढ्य वंश का प्रादुर्भाव सिद्ध किया। अब हम ब्राह्मणत्व का विवेचन करते हैं। [ब्रह्मणोऽपत्य ब्राह्मण] इस व्युत्पत्ति से ब्राह्मणमात्र ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मवंशज माने जा सकते है। ब्रह्मा जी ने जहाँ पर तप किया है वह स्थान आजकल भी तपोवन के नाम से हरद्वार के समीप प्रसिद्ध है। इसी के पास सप्त-स्रोत नामक स्थान है जहाँ पर ब्रह्मा जी ने ब्राह्मण वंश का प्रादुर्भाव किया। इस बात का समर्थन—

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ २६। १५

यह यजुर्वेद का मन्त्र करता है। ब्राह्मणत्व जिन तीन बातो पर निर्भर है उनका वर्णन [तत्र्० २। २। ६] सूत्र के भाष्य मे पतञ्जलि ने इस प्रकार किया है—

तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारणम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥ १॥

इसका अर्थ इस प्रकार है। तप, श्रुत और योनि ये तीन बातें ब्राह्मणत्व को स्थिर करती है, अर्थात् ब्राह्मण से ब्राह्मणी मे

उत्पन्न होने पर तपस्वी और विद्वान् होना पूर्ण ब्राह्मणत्व का परिचायक माना जाता है। जो तप और विद्या से हीन हो वह केवल जातिब्राह्मण कहा जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने के लिये योनि, विद्या और तप की आवश्यकता है, न कि, कान्यकुब्ज, गौड, मैथिल आदि देशो मे उत्पन्न होने को। इसीलिये ब्राह्मणो का आदि निवास स्थान भी "ब्रह्मर्षि देश" के नाम से प्रसिद्ध है। जिसका परिमाण–

> कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
> एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥ २ । १९

मनु में इस प्रकार लिखा है। कुरुक्षेत्र संसार मे प्रसिद्ध है। मत्स्यदेश जयपुर प्रान्त है। पचाल द्रुपद राजा का देश–आज कल एटा–इटावा–मैनपुरी इन तीन जिलो में विभक्त हुआ है। शूरसेन प्रान्त ब्रजमंडल है। इन चारो देशो को मिलाकर एक महान् ब्रह्मर्षि देश बना है। जो वर्तमान समय मे भी प्रायः सनाढ्यों से ही हरा भरा है। दैशिक नामो से प्रसिद्ध ब्राह्मणो के अन्य उपजाति–भेद इस प्रान्त मे प्राय नाममात्र ही रहते हैं।

रामायण, महाभारत, बाराहीसंहिता, शक्तिसङ्गमतन्त्र, अनङ्ग-रङ्ग आदि ग्रन्थों में देशों की जो परिस्थिति मिलती है उस पर विचार करने से यह बात बिना प्रयास के ही सिद्ध होती है कि

पहले समय में इन देशों का नाम तक न था। समस्त भूमंडल ऐकार्णवीभूत था। उस समय यह जगत् न सत् था न असत् था, सदसद्विलक्षण माया को एक देश मे छिपाकर एक अद्वितीय ब्रह्म ही अपनी निरवधिक सत्ता से अवस्थित था। ऐसी अवस्था में देशो के अस्तित्व मिटने पर, कान्यकुब्ज आदि देशों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्यों का अस्तित्व कहाँ था यह बात विचारणीय है।

वर्तमान समय मे भौगोलिक परिभाषा के आधार पर भू-मंडल के ५५ खड माने जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से बसुमती सप्तद्वीपा है। वराहमिहिराचार्य ने अपने ग्रंथ मे पृथ्वो के ३३३ खंड माने हैं। इन सब का अस्तित्व पहिले समय में नहीं था। भूमंडल के क्रमविकास से मानवी सृष्टि का क्रम विकास हुआ। धीरे२ क्रम विकास का क्रम सूर्यवंशी तथा चंद्रवंशी राजाओं का अवलंब पाकर भूगोल को आक्रांत करने लगा। उसका परिणाम अत मे यह हुआ कि मनुष्य अपना पहिला स्वरूप भूल कर अज्ञानान्धकार मे मग्न हुए। ब्राह्मण अपना असली "सनाढ्य" नाम छोड़ कर दैशिक नामों पर आसक्त हुए और तपः-प्रधान ब्राह्मण जाति का यही अधःपतन का कारण हुआ।

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्र-नेमि-क्रमेण"

महाकवि कालिदास के कथनानुसार संसार में-वस्तुओं की परिस्थिति सदा एक सी नहीं रहती है। प्रत्येक पदार्थ मे काल की वक्रिम गति से उपचय और अपचय लगा रहता है। जो मनुष्य

काल-चक्र में पड़कर अपने अज्ञानवश प्राचीन गौरव को भूल जाते हैं वे अपना अस्तित्व खो वैठते है, इस कारण विद्वानो को चाहिये कि वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार नष्ट न होने दें ?

भारत मे ब्रह्मदेव का वश मरीचि-अत्रि-अगिरस्-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु-प्रचेता-वशिष्ठ-भृगु-नारद इन दश पुत्रो के द्वारा अवतीर्ण हुआ है। ये दस ब्रह्मर्षि, ब्रह्मा के मानस पुत्र आदि-सृष्टि में प्रकट हुए। इनमे दो को छोड़कर बाकी आठ पुत्रो का वश चला, जो कि-

"अष्टाशीतिः सहस्राणि ऊर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुः।
तत्र भवतां यदपत्यं तानि गोत्राणि।
अतोऽन्ये गोत्रावयवाः" ॥ व्या० म० ४ । १

इस महाभाष्य के कथनानुसार गोत्र प्रवर्तक ऋषियो के अवलब से आजतक चला आरहा है। सनाढ्यो मे आज तक अविच्छिन्न रूप से-ब्रह्मवंशपरंपरागत-गोत्र परंपरा चली आरही है, इसका प्रधान कारण उनमे गोत्रप्रवर्तक महर्षियो का अविरत यौन सम्बन्ध है, जो कि अन्य देशिक नामधारी ब्राह्मणों में [क्षत्रियों की कन्याओं के साथ बीच बीच मे सम्बन्ध करने से] नष्ट होगया है। इस विषय मे जिनको अधिक विवेचना करनी हो वे पुराणों में लिखे हुए ब्राह्मणों के इतिहास का अवलोकन करें। हमने यहाँ पर केवल संकेतमात्र कर दिया है।

जिन देशों के नाम पर आजकल भूदेव लट्टू होरहे हैं उनका रामायणकाल से पूर्व नाम भी नहीं था। इसका एक उदाहरण हम यहाँ पर उपस्थित करते हैं। कुशनाभ नामक एक क्षत्रिय राजा था। उसने "महोदय" नामक एक नगर शोणभद्र नद के तट पर बसाया था। उसका "घृताची" नामक स्वर्वेश्या से सम्बन्ध हुआ। (स्वर्वेश्या उर्वशी मुखा–इत्यमर) उसके सहवास से उसके यहाँ १०० कन्या उत्पन्न हुईं। उनपर वायुदेव आसक्त हुए। वायुदेव ने उनको अप्राप्य समझ कर कुब्ज (कुबड़ी) कर दिया। तब से उस 'महोदय' नगर का नाम "कान्यकुब्ज" होगया। इसीलिये–

> कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
> घृताच्यां जनयामास धर्मात्मा रघुनन्दनः॥
> अदैव ताः समुद्भूताः कुब्जाः कन्याशतं पुरा।
> तदादि-कान्यकुब्जोऽयं देशः प्रख्यातिमागमत्॥

वाल्मीकि रामायण–बालकांड–सर्ग ३२–३३ मे ऐसा लिखा है। इसमे "तदादि" शब्द विचारणीय है। जबतक 'महोदय' नामक नगर कुशनाभने नहीं बसाया था, और जबतक उस का कान्यकुब्ज नाम नहीं पडा था, तब तक कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहाँ पर किस नाम से प्रसिद्ध थे यह ऐतिहासिक विषय विचारणीय है। यही दशा गौड़ो की भी है। गौड़ देश बंगाल से लेकर भुवनेश्वर (उड़ीसा की हद) तक बसा हुआ था। पद्मपुराण का निम्नलिखित पद्य इसका प्रमाण है —

वंगदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगः शिवे ।
गौड़देशः समाख्यातः समुद्रपरिखावृतः ॥ १ ।४ ।

इसका अर्थ पहिले ही लिखा गया है। इस देश पर किसी समय गौडेंद्रभूप का शासन था। यवनो के शासनकाल मे यह देश छिन्नभिन्न होकर आसपास के प्रान्तों मे मिल गया। यह वृत्तांत महाकवि श्रीहर्षकृत [गौडोर्वीपतिवंशवर्णन] से अवगत होता है। हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि इन देशों के नाम से आजकल जो ब्राह्मण व्यवहृत होते है उनका इन देशों के प्रागभाव मे क्या स्वरूप था ? जो स्वरूप इनके अभाव में था वही आजकल भी मानना चाहिये ।

सनाढ्य तपोधन होने के कारण ब्राह्मण हैं। बाकी सब कान्यकुब्ज आदि देश भेद के समाश्रय से, अपने प्राचीन सनाढ्यत्व के अभाव से, वैदिक "सन" शब्द के साथ असम्बन्ध होने के कारण उपब्राह्मण, जातिब्राह्मण, अथवा ब्राह्मणब्रुव कहे जा सकते हैं, सनातन ब्राह्मण नहीं। क्योंकि सनातन मे अनादिकाल सिद्ध "सनातन" ब्राह्मणत्वका बोधक "सनाढ्य" शब्द के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा शब्द ही नहीं है जो वैदिक होने के कारण सर्वमान्य हो।

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः । १ । ७ ।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। १। २३
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् । ६। ६४

मनु के इन प्रमाणों से हमारा ईश्वर, वेद और धर्म ये सब सनातन हैं । इनमे नित्यता-बोधक एकमात्र "सना" पद है। इसी "सना" पद के सहयोग से ईश्वर, वेद और धर्म नित्य माने जाते हैं। इन तीनो के अस्तित्व का प्रचार करनेवाले जो ब्राह्मण हैं वे भी नित्यतासूचक "सना" पद के साथ संबंध रखने के कारण "सनाढ्य" कहे जाते हैं। जिस प्रकार "सना" पद के सहयोग से ईश्वर, वेद और धर्म अनादि एवं नित्य माने जाते हैं उसी प्रकार "सना" पद के साथ सर्वदा संबंध रखनेवाले ब्राह्मण भी "सनाढ्य" ही हो सकते हैं, अन्य नहीं। यही औरो की अपेक्षा सनाढ्यो मे श्रेष्ठत्व है। अब हम यहाँ पर "सना" पद के साथ सहयोग रखने वाले वेदमंत्रों को उद्धृत करते हैं:—

"ऋग्वेद"

विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते। १। १३६। ८
सनाभूवन्द्युम्नानि। १०। ६६। १२
सना तात इन्द्र नव्या आगुः। १। १७४। ६
सना तात इन्द्र भोजनानि। १। ११। ६
सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः १०। ६६। १२

सायणाचार्य न इनमे से पहिले मत्र मे आए हुए "सना" का अर्थ [सनातनानि–नित्यानि] किया है। दूसरे मे आए हुए "सना" पद का अर्थ [संभजनीयानि] किया है। तीसरे मे आए हुए "सना" पद का अर्थ [प्राचीन] किया है। चौथे मे विद्यमान "सना" पद का अर्थ [रमणीय] किया है। पाँचवे मंत्र मे पठित " सनकान् " पद का अर्थ [सनातन] किया है। इसी प्रकार—

सनो अजामी रुतवा विजामो। १०। ६६। १२
सना अत्र युवतय सयोनीः। २। ४। ६
तिरो विश्वा अह "सनो"। ६। ४। २
सन–६। ४। १
सनम्–८। ६८। १७
सना–१। १३६। ८
सनाः–३। १। ६
सनजाः–१०। २६। ८

ऋग्वेद के इन मंत्रो में अकारान्त "सन" शब्द का प्रयोग मिलता है। यजुर्वेद मे

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः
सनाद्राजभ्यो जुहवाजुहोमि॥ ३४। ५४

इस मंत्र के अन्दर "सनात्" पद उपलब्ध होता है। सामवेद मे—

> अभ्रातृव्यो अनात्वं
> अनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ५ । २ । १

इस मत्र के अन्दर "सनात्" पद मिलता है। अथर्ववेद के अनेक मत्रो मे "सन" का प्रयोग मिलता है। उदाहारणार्थ—

> एषा सपत्नी सनमेव जाता ॥ १० । ८ । ३०
> सनादग्ने मृणसि यातुधानान् ॥ ५ । २९ । ११
> सना तात इन्द्र भोजनानि ॥ २० । ३७ । ६

इतने मत्र यहाँ उद्धृत किये जाते है। इनके अतिरिक्त अन्य मंत्रो में भी "सन" पद का प्रयोग आता है जिन पर सायणाचार्यका भाष्य विद्यमान है। इस विषय मे जिनको अधिक विचार करना हो वे वेदो का स्वाध्याय करे। वेदो के स्वाध्याय के बिना "सनाढ्य" पद का अर्थ समझ मे नहीं आ सकता है। अब हम यहाँ पर "सन" शब्द का अर्थ बतलाने के लिये कोपकारो का मत उपस्थित करते हैं—

> अखंडिते सनं दाने विधिपुत्रे हरौ पुमान्।
> शृंगारे ब्राह्मतपसि प्राशेन्द्रे चरुभक्षणे ॥ १ ॥

यह पद्य गोभिलीय–शब्दहारावली कोष का है। इसका अर्थ यह है कि दान, ब्राह्मण, विष्णु, शृंगार, ब्राह्मतप, प्राज्ञ, इन्द्र, चरुभक्षण इन अर्थों में "सन" शब्द पुंल्लिग है, और अखंडित अर्थ मे नपुंसक लिंग है। इसी प्रकार—

सनस्तपसि वेदे च सत्वे विद्यानुभावयो. ॥२॥

कात्यायन मुनि–प्रणीत वैदिक कोष के इस पद्य मे "सन" शब्द का अर्थ तप, वेद सत्त्वगुण, विद्या और अनुभव है। इसी प्रकार

संभक्तौ विधिपुत्रे
ब्राह्मे तपसि प्रचण्डशृंगारे।
पुंल्लिगः सन शब्द—
स्ततोऽतिरिक्तस्थले क्लीवः ॥३॥

[रभसकोष] के इस पद्य मे सभक्ति. ब्रह्मा के पुत्र, ब्राह्म तप, उज्ज्वल शृंगार, इन अर्थो मे प्रयुक्त "सन" शब्द पुल्लिंग माना है अन्य अर्थों मे, नपुंसक ? महाभारतान्तर्गत "विष्णुसहस्रनाम" स्तोत्र मे महर्षि वेद व्यास जी ने जिन अर्थो मे बार बार "सन" शब्द का प्रयोग किया है उनका वर्णन लेख–विस्तार भय से हम यहाँ पर नहीं करते हैं। विचारशील सज्जन महाभारत में

ही उनका अवलोकन करे। अब हम प्रस्तुतग्रथ के विषय में कुछ लिखकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

यह जो "सुकविसरोज" आप के करसरोज मे उपस्थित है उसका अनुपम सौरभ्य, लोकोत्तर माधुर्य, तथा अलौकिक पराग प्रत्येक सहृदय के लिए हृदयग्राही होगा। मेरी अनुमति मे यह अनुपम ग्रंथरत्न प्रत्येक साहित्यसेवी को अपनाना चाहिए. कई खडो मे यह ग्रंथ समाप्त होगा। उनमे प्रथम खड आप के समक्ष है। इस मे सोलह जीवन चरित्रो का समावेश किया गया है। जीवन चरित्र सभी शिक्षाप्रद होने के कारण अनुकरणीय है, भारत का गौरव बढ़ानेवाले हैं, भावनायो मे नवजीवन के प्रसारक हैं, जातीय-जीवन के स्तभ हैं, ऐतिहासिक जगत् के उज्ज्वल रत्न हैं। इन जीवनो के सग्रह करने वाले स्वनामधन्य 'श्री प० गौरीशकर द्विवेदी' हैं। आपने जिस परिश्रम के साथ इस ग्रन्थ मे उज्ज्वल जीवनो का सकलन किया है—वह अनिर्वचनीय है। इस ग्रथ को लिखकर आप ने प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य का तथा सनाढय जाति का बड़ा उपकार किया है। इस परिश्रम के लिए आपको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही थोडा है। मै साहित्य-सेवियो से, विशेषतः अपने सजातीय सनाढ्य भाइयो से, बलपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे इस ग्रथ को मँगाकर अपना गृह साथ ही अपना हृदय-

मन्दिर अवश्य अलंकृत करें। धनाढ्य सनाढ्यो से मेरा निवेदन है कि वे इस ग्रथ की अधिक सख्या मे प्रतियाँ मँगाकर इस जातीय जीवन स्तंभ मे सहयोग दे, और भविष्य मे निकलने वाले अन्य खंडो के लिये यथाशक्ति सहायता देकर अपने धन का तथा अपनी अनुपम उदारता का परिचय दे, जिससे ग्रंथ-कार का उत्साह बढ़े और जातीय जनता का उपकार हो। समया भाव से इस विषयमे इतना ही लिखकर इस समय मै इस लेख को समाप्त करता हूँ और भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे ग्रथकार को अपना कृपा-पात्र बनाते हुए उनके लिये चतुर्वर्ग फल प्रदान करे।

अनूपशहर
ता० ३-८-२७

निवेदक--
अखिलानन्द शर्मा
'कविरत्न'
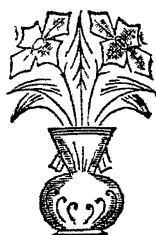
स्वजाति-बन्धुओं के प्रति

दो शब्द

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्यातत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥

संसार में प्रथम तो कवि ही होना कठिन है और फिर कवि होकर काव्य-रचना करने मे सफलता प्राप्त कर लेना तो महान् ही कठिन है। सहस्रो मे कोई एक दो ही भाग्य-शाली कवि, कविता मे सफलता प्राप्त कर यश और कीर्ति के भाजन बन, 'सुकवि' कहला सकते हैं, और ऐसे ही सुकवियो को लक्ष्य कर साहित्यकारो ने कवि को "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू" माना है। सचमुच ही संसार मे 'सुकवियो' का स्थान बड़ा ही ऊँचा होता है। उनकी शक्ति अपार होती है, वे दुर्लभ से दुर्लभ कार्य्य अपनी प्रासादमयी कविता द्वारा ही कर सकने मे समर्थ हो सकते हैं, अपनी काव्य-सुधा से मृतक हृदयो मे भी जीवन संचार कर सकते हैं, सोये हुए भावों को अपनी ओजमयी कविता द्वारा जागृत कर सकते है, निराशा से सूखे हुए हृदयो मे अपनी रसमयी कविता से नवस्फूर्ति भर सकते हैं, अकर्मण्य को प्रतिभा

और उत्साहपूर्ण कविता द्वारा कर्मण्य बनाकर उन्नत पथ की चरम सीमा पर पहुँचा सकते हैं।

वह देश, वह जाति जिस मे एक भी कवि हो जाय, धन्य है। हर्ष है कि कवि-प्रसविनी इस सनाढ्य जाति को एक दो नहीं अनेको सुकवियो को प्रसूत करने का सौभाग्य प्राप्त है, और इस जाति के वे सब उज्ज्वल रत्न बिखरे हुए यद्यपि अपने परम प्रकाश से संसार को आलोकित कर हम सब का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं किन्तु जातीय-इतिहास की रक्षा के लिये यह आवश्यक था कि उनके खोजपूर्ण जीवन-चरित्र एक मणि-माला मे एकत्रित कर लिए जाते। सनाढ्य-ससार का यह अभाव मुझे अधिक समय से खटक रहा था। किन्तु अपनी अयोग्यता को विचारते हुए यह सोचता था, कि यह कार्य्य जाति के किन्ही महापुरुषो द्वारा सम्पादित हो तो अच्छा। इसी हेतु 'सनाढ्योपकारक मे' दो एक बार मै ने लेख लिख तथा "श्री सनाढ्य महामण्डल" के एक अधिवेशन मे इसी आशय का एक प्रस्ताव भेज सनाढ्य-जनता से इस ओर ध्यान देने के लिये प्रार्थना की थी। इधर "श्री बुन्देलखण्ड प्रान्तीय सनाढ्य-मण्डल" का सगठन होने पर सन् १९२३ के ललितपुर (झाँसी) वाले अधिवेशन मे भी इसी आशय के मैंने प्रस्ताव रक्खे थे। किन्तु जब कहीं से भी उपर्युक्त अभाव की पूर्ति होते दिखाई न दी तब विवश हो मै ने ही इस

कार्य्य को अपने निर्बल हाथो द्वारा प्रारम्भ करने का संकल्प किया और फल स्वरूप प्रस्तुत 'ग्रन्थमाला' का यह प्रथम पुष्प 'सुकवि-सरोज' (प्रथम-भाग), जैसा भी हो सका, आप सबकी सेवा मे प्रस्तुत है। यद्यपि मैं यह भली प्रकार जानता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन करके मै ने साहित्य के किसी विशेष अंग की पूर्ति नहीं की है, किन्तु मेरा यह प्रयास जिस कार्य्य की पूर्ति के लिए हुआ है वह अवश्य ही महान् है और यदि इससे उसकी सफलता मे कुछ भी सहायता मिली तो मुझे परम संतोष होगा।

इसके सम्पादन करने मे जिन जिन कठिनाइयो का मुझे सामना करना पडा है उनका उल्लेख करना निरर्थक ही सा है। किन्तु इसके प्रकाशन मे जो इतना विलम्ब होगया है उसका एक-मात्र कारण यह है कि प्रथम मैंने लगभग १५० सनाढ्य सुकवियो के जीवनचरित्र आदि एक ही बार 'सुकवि–सरोज' मे प्रकाशित करने का विचार किया था। किन्तु जब कुछ सुकवियो के जीवन चरित्र अधिक प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होसके तब विवश हो प्रस्तुत साहित्य के कुछ भाग ही को प्रेस मे देकर इसके इस 'प्रथम भाग' को प्रकाशित करने की व्यवस्था करनी पड़ी। प्रस्तुत कवियो के अतिरिक्त मुझे इसी समय के और भी बहुत से सुकवियों का अनुसन्धान मिला है। किन्तु उनके

सम्बन्ध का सम्पूर्ण साहित्य प्राप्त न हो सकने के कारण मैं उन्हें इस भाग में सम्मिलित कर सकने मे समर्थ नहीं होसका हूँ। उनके जीवन-चरित्रो की पूर्ति के लिए अधिक समय, खोज और अनेक साधनो की आवश्यकता थी। अत यह सोचकर कि प्रथम जाति बन्धुओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए इस भाग को प्रकाशित करके उनकी अभिरुचि का पता प्राप्त करूँ और तब और सुकवियो के अन्वेषणादि की ओर अग्रसर होऊँ।

इस सग्रह मे सम्मिलित हुए कवियो के अतिरिक्त सम्भव है और भी कितने हो सुकवियो का मुझे पता न चल सका हो। अत यदि कोई सुकवि महोदय लिखने से रह गए हो तो विज्ञ पाठक दया कर मुझे सूचित करे। यह न समझे कि उनकी उपेक्षा की गई है।

महाकवि केशव और बलभद्र के पूर्व के सुकवियो को केवल संस्कृत भाषा के कवि होने के कारण मैंने एक अन्य भाग के लिये छोड़ दिया है। यथासमय उनके भी जीवन चरित्र आदि प्रकाशित करने की व्यवस्था की जायगी।

प्रस्तुत भाग मे जो क्रम रक्खा गया है वह कवियो के जन्म सम्वत् ही के अनुसार रक्खा गया है।

इस पुस्तक की भूमिका, सनाढ्य-संसार के सुप्रसिद्ध महोपदेशक और संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के सिद्धहस्त लेखक और सुकवि श्री०प० अखिलानन्द जी शर्मा पाठक 'कविरत्न' ने लिखने की कृपा की है। तदर्थ मै आपका अति ही उपकृत हूँ।

टाइटिल पेज पर छपा हुआ महाकवि केशवदास जी का चित्र, जो कि दस्ती और बहुत ही पुराना है, मुझे साहित्यरत्न श्री० पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध" द्वारा 'श्रीकाशी नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्राप्त हुआ है। अत मै इस कृपा के लिए पूज्य उपाध्याय जी और 'सभा' का हृदय से आभारी हूँ।

मैं, श्रद्धेय श्री० प० कन्हैयालालजी मिश्र बी० ए०, मन्त्री, राजा बहादुर बलरामपुर, कविरत्न श्री पं० अखिलानन्द जी पाठक, श्री पं० रामगोपाल जी मिश्र बी० एस-सी०, आदि कवि-कुमार पं० भद्रदत्त जी त्रिवेदी, प० बिनायक प्रसाद जी सीरौ-ठिया, प० श्रवण प्रसाद जी मिश्र, प० देवीरामजी शर्मा 'दिव्य' बाबू कृष्णबल्देव जी वर्मा और बाबू द्वारका प्रसाद जी गुप्त, 'रसिकेन्द्र' का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। यह आप सब ही के प्रोत्साहन का फल है जो मैं प्रस्तुत पुस्तक को, समुचित अवकाश न होने पर भी, इतनी शीघ्रता से पाठकों को भेंट कर सकने मे समर्थ हो सका हूँ।

आशा है सभी स्वजाति-बन्धु इसे अपना कर मेरे उत्साह को बढ़ाने की कृपा करेंगे।

(व्यास क्षेत्र)
व्यास-पूर्णिमा, गुरुवार सं० १९८४
ता० १४-७-१९२७

आप सब का सेवक
गौरीशङ्कर द्विवेदी

अन्य जातीय हिन्दीसाहित्य-प्रेमी सज्जनों के प्रति

नम्र निवेदन

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक मे केवल सनाढ्य सुकवियों ही के जीवन-चरित्र संगृहीत है, तथापि सनाढ्य भाइयो के अतिरिक्त यह पुस्तक हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों के लिए भी बड़ी उपयोगी होगी। क्योंकि संस्कृत के एक महाकवि के कथनानुसार कि:—

ते बन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥

अर्थात् वे वन्दनीय है, वे महात्मा हैं और उन्ही का यश इस संसार मे स्थिर है जिन महानुभावों ने काव्य बनाये हैं, या जिनका काव्य में वर्णन हुआ है।

कवि किसी भी जाति का क्यो न हो मातृ-भाषा की सेवा के नाते संसार मे सभी को एक समान ही मान्य होता है। और विशेष कर केशव, विहारी और देव के समान महाकवियों के खोजपूर्ण जीवनचरित्र, जिनका कि हिन्दी संसार मे एक प्रकार से अभाव ही सा था, इससे भली प्रकार जाने जा सकेंगे। इसके

अतिरिक्त, कुछ ऐसे भी सुकवियों के जीवन-चरित्र इसमे संगृहीत हैं जिनका कि अब तक के प्रकाशित हुए किसी भी ग्रंथ मे वर्णन नहीं। कविवर दान के इस सवैया के अनुसार कि—

"अर्थ है मूल, भली तुक डार, सुअक्षर पत्र को देखि के जीजै।
छंद है फूल, नवों रस हैं फल, प्रेम के वारि सो सींचबो कीजै॥
"दान" कहें यों, प्रवीनन सों, कवि की कविता रस राखिके पीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं, कबहूं इनको कुम्हलान न दीजै॥

हमे अपने सुकवियो की कीर्ति को कुम्हलाने न देना चाहिए। इतिहास की रक्षा के लिए पुरातन कवियो की खोज के विषय मे उदासीन न रहना चाहिए। अस्तु, विज्ञेषु किम्बहुना।

यदि मातृभाषा के प्रेमी, साहित्य-सेवी और काव्य मर्मज्ञ सज्जनों ने इस विषय के मेरे इस प्रथम प्रयास को अपनाकर मुझे उत्साहित किया तो मै अन्य जातीय सुकवियो के भी खोजपूर्ण जीवन चरित्र उन्हें भेट कर सकने का प्रयत्न करूँगा।

आशा है विज्ञ पाठक "संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार" के अनुसार इससे समुचित लाभ उठाकर मेरे श्रम को सफल करेंगे।

—सम्पादक

—o—

(प्रथम–भाग)

श्री० पं० बलभद्रजी मिश्र

श्री० पं० बलभद्रजी मिश्र का जन्म सं० १६०० वि० के लगभग ओडछे मे हुआ था। आप महाकवि केशवदासजी मिश्र के सगे बड़े भाई थे। महाकवि केशवदासजी ने अपने वंश के विषय मे 'कवि-प्रिया' मे इस प्रकार वर्णन किया है :—

"चतुरानन ब्रह्माजी से सनकादि की उत्पत्ति हुई, इन्हीं से सनाढ्य ब्राह्मणों की सृष्टि हुई। परशुराम ने सनाढ्यों को उत्तम विप्र जानकर उनके पैर पखार कर उन्हें ७२ ग्राम दिये। श्रीरामचन्द्र

जी ने मथुरा-मण्डल में उनको सात सौ ग्राम दिये। श्रीकृष्ण-चन्द्रजी ने उन्हें फिर वही देश दिया।

सनाढ्यों मे कुम्भवार उद्देश कुल में देवानन्द हुए जो कि महान पण्डित थे और इस वश के मूल ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन भाग्यशील के पुत्र पण्डित प्रवर जयदेवजी थे, जो अन्तिम हिन्दू-सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के सभा-पण्डित थे, इन्ही के वंशज पं० दिनकरजी अलाउद्दीन के राज्य-पण्डित थे इन्हे गया-धाम मे अलाउद्दीन ने जागीर भी दी थी, जहाँ उनके पुत्र पं० गदा-धरजी हुए इनके पुत्र जयानन्दजी थे, इनके बेटे पण्डित राज त्रिविक्रम मिश्र थे जिनके कि गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर) किले के राजा ने पैर पूजे। इनके सुपुत्र भाव शर्म्मा उनके पुत्र षट् दर्शन पारंगत शिरोमणि मिश्र हुए। इनमे मानसिंह से अनबन थी, किन्तु चित्तोरगढ़ के राना ने आपके पाँव पखार कर बीस गाँव दिये। इनके पुत्र पं० हरिनाथजी हुए। और हरिनाथजी के पुत्र प० कृष्णदत्तजी मिश्र हुए। जिन्हे महाराज रुद्र प्रताप ने ओड़छे-दर्बार का राज्य-पण्डित नियत कर पौराणिक वृत्ति दी और राजगुरु माना इनके पुत्र अगाध पाण्डित्य से विभूषित 'शीघ्रबोध' के रचयिता पण्डित काशीनाथजी थे, जो ओड़छा-धीश महाराज मधुकर शाह के राज्य-पण्डित तथा गुरू थे, काशी-नाथजी के समय तक इनके वंश मे इतना सस्कृत का प्रचार रहा कि पण्डित राजो के कुल के दास तक संस्कृत ही मे सम्भाषण करते थे ; यथा :—

भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंद-मति, तिहि कुल केशवदास॥

(कवि-प्रिया) ॥ १७ ॥

काशीनाथजी वेदो तथा वेदांगों के अगाध पण्डित थे समय के झुकाव को वह भली भाँति पहिचानने वाले थे, काल की गति को देखकर ही उन्होने 'शास्त्रबोध' रचा था, जो उसी समय हिन्दुओ मे सर्वमान्य ग्रथ होगया और जिसने यावनी अत्याचार से बहुत कुछ हिन्दुओ के मान-मर्यादा की रक्षा करली। इन पण्डित महोदय के त्रिदेव समान तीन पुत्र रत्न हुए, अर्थात्– बलभद्रजी, केशवदासजी और कल्याणजी। यह आपके वंश की पूर्व-कथा है।

काशीनाथजी की शिक्षा के प्रभाव से आपके पुत्र बालकपन ही मे प्रबल पण्डित होगये। बलभद्रजी का, बाल्यावस्था ही मे, ऐसा प्रबल पाण्डित्य होगया था कि वे बाल्यकाल ही में अष्टादश पुराण, महाराज मधुकर शाह को सुना सके थे।

बलभद्रजी भाषा-काव्य के भी पूर्ण पण्डित थे। यद्यपि हमें आपकी अधिक कविता प्राप्त नहीं हो सकी, फिर भी प्रस्तुत कविता से यह भली प्रकार बोध होता है, कि आप भी महाकवि केशवदासजी ही के समान असाधारण कवि रहे होंगे।

आपने निम्न-लिखित ग्रंथो की रचना की थी —

(१) नख शिख (२) भागवत भाष्य (३) बलभद्री-व्याकरण (४) हनुमन्नाटक टीका (५) गोवर्द्धन सतसई टीका और (६) दूषण विचार।

इनमें से 'नखशिख' और 'दूषण विचार' को छोड़कर अवशेष ग्रंथ अप्राप्य ही से हैं। प्रतीत नहीं होता वे प्रकाशित हुए या नही और यदि हुए भी तो कहाँ से, आदि बातो का मिलना दुर्लभ हो रहा है।

आपके वंशज अब भी चिरपुरा (झाँसी) मे विद्यमान हैं । और इस ग्राम की ज़मीदारी अब भी आपके वशजो के अधिकार मे है । आपकी सुकविताओ के उदाहरण निम्न-लिखित हैं —

१

मरकत सूत- कैधौं पन्नग के पूत अति,
राजत अभूत तमराज कैसे तार है ।
मखतूल गुण ग्राम सोभित सरस श्याम,
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार हैं ॥
कोप की किरनि कै- जलज नल नील तंत,
उपमा अनंत चारु चँवर शृँगार है।
कारे सटकारे भीजे सोंधे सुगंध बास
ऐसे 'बलभद्र' नवबाला तेरे बार है ॥

२

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ,
बलभद्र बासर उनोदी लखी बाल मे ।
शोभा के सरोवर में वाड़व की आभा कैधों,
देव-धुनि भारती मिली है पुन्य-काल मे ॥
काम कै बरत कैधौ नासिका उडुप बैठ्यो,
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल में ।
लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो,
बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल में ॥

३

कैधों शिशुताई के पयाने शामियाने ताने,
सुन्दर सुधार पट, कुटिका हैं लाज की ।
कोकसाला रूप की कि काम हो को सुखसाला
'बलभद्र' कामल कुलह काम बाज की ॥
मोहनी का जाल, का उज्ञल अमो कुभनो का,
डारो है अँध्यारा किधों मद गजराज को ।
गोरे २ गोल कुच तेरे नील कंचुका मे,
पहिरे सिलह रति रन के समाज को ॥

नोट—यदि पाठक ध्यान-पूर्वक उपरोक्त छन्दों को पढ़ेंगे, तो ज्ञात होगा कि उनमें किनना काव्य-चमत्कार भरा हुआ है। क्या ही अच्छा हो यदि साहित्य-प्रेमी सज्जन इन की रचनाओं को खोजकर प्रकाशित करादें।

महाकवि पं० केशवदासजी मिश्र

महा कवि प० केशवदासजी मिश्र का जन्म सं० १६१८ वि० के चैत्र मास मे ओड़छे* मे हुआ था। आपके वंश-वृक्ष मे जोकि अन्यत्र प्रकाशित हो रहा है, निम्न-लिखित दोहे लिखे हैं—

संवत् द्वादश षट् सुभग, सोरह सै मधुमास।
तब कवि केशव को जनम, नगर ओडछे बास॥
उतपति निज कुलको सुनो, व्रज में डीग कुम्हेर।
द्विज सनाढ्य मुनि मिश्र कहि सुजन देखि मोहि टेर॥
यजुर्वेद श्रवणन सुनो, गोत्र सुभारद्वाज।
शाखा सुभ कहि मादनो, इष्ट देव रघुराज॥

आप श्री पं० काशीनाथजी मिश्र के पुत्र तथा श्री० प० कृष्णदत्तजी मिश्र के पौत्र थे। विज्ञान गीता मे आपने अपने विषय मे इस प्रकार लिखा है—

केशव तुंगारण्य में, नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै, पण्डित मण्डित भीर॥

---

* ओडछा नगर टिहरी अथवा टीकमगढ-राज्य की प्राचीन राजधानी वत्रवती (बेतवा) नदी के तट पर झांसी से पूर्व बारह मील पर है और पुरातन काल के कोट-दुर्ग राज्य-मंदिरों तथा देव-मंदिरो से सुसज्जित हो अपने प्राचीन गौरव की सुधि दिला रहा है। महाकवि केशव के भवन अद्यापि वहां पड़े हैं। उनके उपास्यदेव महावीरजी की मूर्ति तथा उसी के निकट उनकी

तहाँ प्रकास सों निवास, मिश्र कृष्णदत्त को।
अशेष पडिताग्रनी, सुदास विष्णु भक्त को।।
सुकाशिनाथ तासु पुत्र, विज्ञ काशिनाथ को।
सनाढ्य कुभवार अश, वंश वेद व्यास को।।
तिन के केशवदाससुत भाषा कवि मति मंद।
करी ज्ञान गीता प्रगट, श्रीपरमानँद कंद।।

आप सनाढ्य ब्राह्मण तथा भारद्वाज गोत्रीय मिश्र थे। आपका आदि गृह बृज मे डीग कुम्हेर के नाम से प्रसिद्ध था। आपके वंश की बाते आपके बड़े भाई बलभद्रजी मिश्र के जीवन चरित्र मे लिखी जाचुकी हैं, अत उन्ही बातो को यहा दुहरा कर हम पाठको का समय नष्ट नहीं किया चाहते। अस्तु।

आपके पिता पं० काशीनाथजी मिश्र ओडछे की राज्य-सभा के एक रत्न और सस्कृत ज्योतिष आदि के एक धुरधर विद्वान थे। केशवदासजी ने किसी पाठशाला मे शिक्षा नहीं पाई थी। आप के पिता काशीनाथजी ही आपको पढाया करते थे और बहुधा अपने ही साथ आपको रखते थे

आप बचपन ही मे इतने होनहार और कुशाग्र बुद्धि के थे कि सहस्रो श्लोक, प्रभातीं, पद्य और भजनादि आपने अपनी अल्पवय ही में कण्ठ कर लिये थे। फिर ज्यों ज्यो आपकी अवस्था अधिक होती गई, त्यों त्यों आपकी चतुरता और बुद्धि भी

इमली का वृक्ष अब भी विद्यमान है। ओडछे के सविस्तार वृन्तात के लिए कालपी-निवासी बाबू कृष्णबल्देवजी वर्मा का 'बुंदेलखण्ड-पर्य्यटन' शीर्षक लख 'सरस्वती' दूसरा भाग संख्या ८ तथा ९ पृष्ट २६२–२७१ तथा ३०१–३०६ सन् १९०१ ई० मे देखिए।

उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गई। और अपने पिताजी ही के समय मे आप व्याकरण ज्योतिष, पिंगल, आयुर्वेद, छंद-शास्त्र आदि मे भली प्रकार योग्यता प्राप्त कर पारगत विद्वान होगये थे।

आप तीन भाई थे— बलभद्र, केशवदास और कल्याण। 'कवि-प्रिया' मे आपने अपने भाइयो के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है —

> तिनको वृत्ति पुराण की, दीन्ही राजा रुद्र।
> तिनके काशीनाथ सुत, शोभै बुद्धि समुद्र॥
> तिनको मधुकर शाह नृप, बहुत कर्यो सन्मान।
> तिनके सुत बलभद्र शुभ, प्रकटे बुद्धि निधान॥
> बालहि से मधुशाहि नृप, जिन पै सुनै पुरान।
> तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान॥

पिताजी की मृत्यु के पश्चात् आप भी मधुकर शाह के पुत्र दूलहरामजी की राज-सभा के रत्नों मे सम्मानित हुए और वहाँ जीवन-पर्य्यन्त आपका बडा ही मान और वैभव रहा। और वास्तव मे कविता की उत्तमता के कारण जितना मान केशव का हुआ है, उतना किसी और कवि का नही हुआ, और इसीसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि आप अपने समय के एक अद्वितीय महाकवि थे। वैसे तो हिन्दी-भाषा का काव्य-साहित्याकाश असंख्य नक्षत्र-राशि-रूपी कवियों के चमत्कार-मय काव्यो से आलोकित हो रहा है; परन्तु इस उडुगन राशि के वृत्ताकार मार्ग के केन्द्र-स्वरूप काव्य-साहित्य के दिवाकर जिन से वे गगन-पिंड प्रकाश पा रहे हैं—महाकवि केशवदासजी ही हैं। इन्ही की गुरुत्व शक्ति से आकर्षित हुए काव्य-साहित्य-गगन के तारक-समूह मर्यादा-मार्ग

मे इनको सश्रद्धा परिक्रमा करने मे इनसे आलोक पाते हैं। कवि-कुल-गुरु श्रीकालिदास-वत् भाषाकाव्य-साहित्यशास्त्र के आचार्य होने की यदि प्रतिष्ठा किसी को प्राप्त है, तो वह महाकवि केशवदासजी ही को है। इनकी अलौकिक काव्य की प्रतिभा ही से चकाचौंधित होकर किसी कवि को कहना पड़ा था कि "देबो न चाहै विदाई नरेश तो पूंछत केशव की कविताई" एक महाकवि ने सश्रद्धा हास्य के भाव से प्रेरित होकर केशव को "कठिन काव्य का विकट पिशाच" कह कर उनका अभिवदन किया है। और उनके प्रेत-यज्ञानुष्ठान का स्मरण कराते हुए उन्हे आचार्य की प्रतिष्ठा दी है। यहा पर यह कहा जा सकता है कि क्या भक्त शिरोमणि सूरदासजो तथा शक्ति वंचित, मृत-प्राय हिन्दू-धर्म के सुषेण वैद्यवत् चिकित्सक प्रात स्मरणीय महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी केशवदास की कोटि के कवि नहीं हैं? इसका उत्तर हम स्वयं न देकर जो घटना सम्राट् वर अकबर के समक्ष मे, जब वे विश्वनाथपुरी काशी में पधारे थे और वही महात्मा सूरदासजी और तुलसीदासजी के दर्शन को गये थे, हुइ थी, यहाँ हम उल्लेख करते हैं। जन-श्रुति है कि—"एकबार अकबर काशी मे थे और महात्माओ के दर्शनो से लालायित होकर उन्होने अपने प्रतिष्ठित मंत्री द्वारा उस समय के सभी महात्माओ से विनय कराई कि वे कृपाकर मणिकर्णिका घाट पर पधार कर सम्राट् को दर्शन दे कृतार्थ करे।

सूरदासजी से अकबर का विशेष सम्बन्ध था, क्योकि उनके पिता बाबा रामदासजी अकबर के प्रधान नायको मे थे, खान-खाना की मैत्री से प्रेरित होकर महात्मा तुलसीदासजी ने भी

दर्शन देने की कृपा की थी। भाग्यवश केशवदासजी भी अकबर के साथ थे, ओड़छाधीश महाराज मधुकरशाह की मैत्री अकबर से थी, जिसके कारण केशवदासजी का बहुधा अकबर की राज्य सभा मे आना जाना होता था। उधर महाराज महेशदासजी (बीरबल) के भी केशवदासजी कृपापात्र थे, क्योकि दोनो ही बुन्देलखण्ड-निवासी थे, इस कारण भी दर्बार मे विशेषत आना जाना बना रहता था। सक्षेप यह कि सम्राट् की लालसा से मणिकर्णिका घाट पर माहात्मा-मण्डल एकत्रित हुआ। अकबर ने सतों का दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया अवसरोचित उनकी सुश्रूषा कर औरो को विदा किया। केवल कुछ इने गिने महात्माओ से कुछ काल और ठहरने की प्रार्थना की इस समय काशी-तट-वाहिनी जान्हवी के मणिकर्णिका घाट के निकट अनायास एक सजीव त्रिवेणी का दृश्य दिखाई देने लगा। यह त्रिवेणी काव्य-साहित्य के आचार्यों के सगम से बनी थी। पतित-पावन गोस्वामी तुलसीदास जान्हवी की पवित्र धारावत् उपस्थित थे, गुप्त सरस्वती के मूर्तिमय प्रतिनिधि सूरदासजी दोनो चक्षुओ को मींचे वहाँ बिराज रहे थे, इन्ही मे स्वयम यमुना-तट-बिहारी केशव यमुना के तद्रूप हो आ सम्मिलित हुए। त्रिवेणी तरगित हो उठी काव्य की हिलोरें उठने लगी, अभूतपूर्व आनन्द बरस उठा, दैव संयोग से अनायास सम्राट् बोल उठे कि— आज आप तीन महान कवियों मे यह निश्चय करना कि वास्तव मे कवि कौन है, असम्भव सा जान पड़ता है, इसलिए केशवदासजी आप ही बताइए कि आप में कवि कौन है। केशव ने उत्तर दिया कि—'मैं' सम्राट् ने फिर पूंछा, केशव ने फिर वही उत्तर दिया और ऐसा ही तीसरी बार पूँछने पर कहा।

तब अकबर को अत्यन्त दुःख हुआ कि मैंने व्यर्थ ही ऐसा प्रश्न कर दो महात्माओं का अपमान कराया। इस विचार से अकबर का चित्त बहुत खिन्न हुआ, प्रवीण केशवदासजी तुरन्त ताड़ गए और सम्राट् से बोले कि राज्याधिराज आप खिन्न न हूजिए, मैंने केवल आपके प्रश्न का उत्तर दिया है न कि पूज्यनीय महात्माओं की अवज्ञा की है। ये कवि नहीं हैं ये देव कोटि के पुरुष अवतारी महात्मा हैं। सूरदासजी भगवान् श्रीकृष्ण के बाल सखा उद्धवजी के अवतार हैं और तुलसीदास जी राघवेन्द्र रामचन्द्रजी से भी पूजित महर्षि बालमीकि के अवतार हैं। इन्हें मैं केवल कवि कहकर इनकी अप्रतिष्ठा नहीं कर सकता। ये तो पूजनीय देवता हैं। परन्तु मैं केवल कविमात्र हूं। केशव की इस अनूठी युक्ति और समाधान को सुनकर साधुवाद की ध्वनि आने लगी और सम्राट् भी इस समाधान को सुन मग्न हो गद्गद हो गये।

केशव का वास्तव मे काव्य पर जन्मसिद्ध अधिकार था उनके पूर्वज सदा से ऊँची श्रेणी के विद्वान और कवि रहे हैं। वह अपनी सरस्वती उपासना के प्रभाव से बड़े बड़े सम्राटो से पूजे जाते रहे हैं उनके पूर्वजों से लेकर अभी तक उनके वंश मे बराबर कवि होते चले आरहे हैं। आजकल भी दो * कवि

* (१) श्री० प० देवकीनन्दनजी मिश्र— { आपकी भी जीवनी 'द्वितीय भाग' मे प्रकाशित होगी।

(२) श्री० प० श्रवणप्रसादजी मिश्र— { आपकी भी जीवनी 'द्वितीय-भाग' मे प्रकाशित होगी।

उनके वंश में विद्यमान हैं और + फुटेरा नामक ग्राम की जमींदारी अब भी उनके वशजो के अधिकार मे हैं। यह ग्राम केशव की जागीर का २२ वा ग्राम है। यह ग्राम निम्न-लिखित घटना पर केशवदासजी को मिला था। जनश्रुति है कि एक समय केशवदासजी पालकी मे बैठे हुए, इस गाँव (फुटेरा) मे होकर निकले। उन दिनों यह ग्राम उद्धत अहीरो के अधिकार मे था। जब पालकी इस गाँव मे पहुँची तो पालकी के कहारो ने विश्राम करने के विचार से, क्योकि उन दिनो बैशाख या ज्येष्ठ का महीना था, पालकी को, पटा नामक कुआँ के पास (जो कि अब भी ह) उतारी। और पानी पीने की व्यवस्था करने लगे, किन्तु किसी कारण-वश वहां के अहीरों ने, कुछ झगड़ा हो जाने के कारण, उन कहारो के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया। जब केशवदास जी ओडछे पहुँचे, तो इन अहीरो के दुर्व्यवहार की खबर महाराज इन्द्रजीत के भी कान तक पहुंच गई। महाराज इन्द्रजीत को यह समाचार सुनकर बहुत ही दुःख हुआ और उन्होने शीघ्र ही उन अहीरों को उपरोक्त ग्राम के अधिकार से वंचित कर कड़ा दण्ड देने की घोषणा की, किन्तु उदार केशवदासजी ने उन सबको शीघ्र दण्ड से मुक्त करा दिया। तत्पश्चात् महाराज इन्द्रजीत ने यह ग्राम केशव ही को बख़्शीस कर दिया। तब से यह अबतक उनके वंशजों के अधिकार मे है। शेष जागीरी ग्राम बुन्देलखण्डीय राज्य-क्रान्तियो के कारण उनके अधिकार से निकल गये। यह

× फुटेरा, झाँसी से १२ मील दक्षिण की ओर है, झाँसी से बम्बई जानेवाली रल्वे लाइन पर खजराहा झाँसी से दूसरा रल्वे स्टेशन ह। वहाँ से यह ग्राम पाच मील की दूरी पर है। इस ग्राम मे कल्यानी नामक एक पहाड़ी पर शिवजी का मन्दिर देखने योग्य बना हुआ है। यह बहुत ही प्राचीन है।

भी ज्ञात हुआ है कि स० १९०० वि० के लगभग केशवदासजी के कुछ वंशधर ओडछा राज्याधीश्वरो की बहुत सी सनदे, जो केशवदासजी तथा उनके वंशजो को जागीरो के सम्बन्ध मे द गयी थी, लेकर ओड़छा-राज्य की वर्तमान राजधानी टीकमगढ़ में महाराज से यह निवेदन करने गये थे कि 'महाराज इन सनदों के अनुसार या तो हमे ग्रामो पर अधिकार दिया जावे अन्यथा ये सनदें लौटा ली जावै।' टीकमगढ़ पहुचने पर वे राज-दर्बार मे उपस्थित हुए और उपरोक्त आशय की प्रार्थना की। तब दर्बार से आज्ञा हुई कि 'ठहरो विचार किया जायगा'। दीन ब्राह्मण इस आशा से कि विचार होगा, चिरकाल तक घर छोड़े टीकमगढ़ मे पड़े रहे, परन्तु फिर दर्बार मे उनका प्रवेश भी न हो पाया, तब निराश हो सारी सनदो को वे क्रोधवश वहीं नदी मे डुबाकर घर लौट आये। और इस प्रकार बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओ की स्मृति का नाश होगया, क्योकि न जाने उन सनदो मे क्या लेख थे। किन अवसरो के पुरस्कार मे वह सनदें दी गई थी। इस वंश के अधिकार मे अब भी बहुत से प्राचीन काल के लेख पुस्तकें आदि बस्तो मे भरी पडी हैं, जिनमें खोजने से बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री के प्राप्त होने की आशा है।

विदित हो कि मेरा सम्बन्ध महाकवि केशवदासजी के वंश से जामातृ होने का है, इस कारण मुझे उनके वंश की पूर्व कथाओं के जानने के समय समय पर बहुत कुछ साधन प्राप्त रहे हैं, अत: उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ मनो-रंजक बातो का मैं यहां उल्लेख करता हू। एक बार केशवदास-जी ने महाराज बीरबल के द्वारा एक करोड़ का जुर्माना, जो कि

इन्द्रजीतसिंह पर निम्न-लिखित घटना पर हुआ था, अकबर बादशाह से माफ करवा दिया था।

महाराज इन्द्रजीतसिंहजी के यहाँ निम्न-लिखित छः वेश्याएँ थीं—रायप्रवीन, नवरँगराय, विचित्र नयना तानतरंग, रंगराय और रंगमूरति। रायप्रवीन बड़ी ही सुन्दरी और कविता में निपुण थी, वह महाराज इन्द्रजीतसिंह की प्रेमिका थी। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर एक बार सम्राट् अकबर ने उसे बुला भेजा। महाराज इन्द्रजीतसिंह के समक्ष इस आज्ञा ने बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न करदी। इधर बादशाह का हुक्म और उधर रायप्रवीन जाने को प्रस्तुत न थी, क्योंकि वह वेश्या होते हुए भी अपने को पतिव्रता समझती थी। उसके निम्न-लिखित कवित्त में, जोकि इसी अवसर पर उसने इन्द्रजीत सिंह से कहा था, स्पष्ट जान पड़ता है:—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें, निज सासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिये न लजौं लजिहै सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ, चित्त विचारि कहौ अब कोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता, अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

यह सुनकर इन्द्रजीतसिंह ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा। इस पर बादशाह ने उनपर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया जो कि फिर केशवदासजी ने आगरे जाकर महाराज बीरबल-द्वारा यह जुरमाना माफ करवा दिया था। कहते हैं कि आपने निम्न-लिखित सवैया महाराज बीरबल को सुनाया था:—

पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद लोक रचे दस चारी।
'केशव' देव, अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी॥

कै वर बीर बली बलबीर, भयो कृत कृत्य महाव्रतधारी ।
दै करतापन आपन ताहि दई करतार दुवौ करतारी ॥

इस सवैया को सुनकर महाराज बीरबल इतने प्रसन्न हुए कि उन्हों ने वह एक करोड का जुर्माना अकबर से माफ करा दिया और छ लाख रुपये और आनर्थी भेट किये तब केशवदास-जी ने निम्न-लिखित एक और सवैया उसी समय कह सुनाया —

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि-रंक को अंक बनाय संवार्यो॥
छोड़े छुट्यो नहि धोये धुवौ, बहु तीरथ के जल जाय पखार्यो।
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं, जब बीरबली वर बीर निहार्यो ।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्यो ॥

यह सुनकर बीरबल परम प्रसन्न हुए और आपने माँगने के लिए कहा तब केशवदासजी ने निम्न-लिखित दोहे में अपना आशय प्रगट किया —

यों ही कह्यो जु बीरवल, माँगु जु माँगन होय ।
माँग्यो तुव दरबार में, मोहिं न रोकै कोय ॥

सुनते हैं कि बीरबल के यूसुफ जईयो के युद्ध पर जाने के समय अकबर ने यह घोषणा की थी कि प्यारे बीरबल के अनिष्ट की बात यदि किसी के मुख से निकलेगी, तो वह भीषण दण्ड का भागी होगा, कहा जाता है कि दैवगति से जब उनके मारे जाने का समाचार आया तब सारा दर्बार स्तब्ध हो गया, लोग चिंतित थे कि यह समाचार कैसे बादशाह तक पहुचाया जावे, सब किंकर्तव्य विमूढ हो गये सौभाग्य-वश केशवदासजी उन दिनो वहीं पर थे, अत सब ने

केशवदासजी ही से प्रार्थना की तब केशवदासजी ने निम्न-लिखित दोहा सम्राट् अकबर के सामने कहा —

यांचक सब भूपति भए, रह्यो न कोऊ लेन ।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबर देन ॥

इसको सुनकर अकबर बोल उठे कि हाय ! क्या बीरबल मारे गये । तब केशव ने कहा जहांपनाह इस प्रकार कहने की राज्याज्ञा नहीं थी । उसे सुनते ही अकबर ने शोकाकुल हो यह सोरठा पढ़ा —

सबको सब कुछ दीन्ह, दुःख न काहू को दियो ।
सो मर हमको दीन्ह, भलो निबाही बीरबर ॥

इत्यादि ऐसी ऐसी अनेक महत्व-पूर्ण घटनाएँ आपके सम्बन्ध मे है । सचमुच ही आपकी कवित्व शक्ति इतनी अनूठी और उपज इतनी उत्तम और समयानुसार होती थी कि जिसे सुनकर सुननेवाले मंत्र-मुग्ध की भाँति रह जाते थे । यह तो कहा ही जाचुका है कि आप सस्कृत-साहित्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे, किन्तु अपनी कुशाग्र बुद्धि के प्रभाव से आपने यह अनुभव किया कि जो सर्व साधारण की भाषा है, उसीके साहित्य का उन्नति करने से सर्व साधारण की मनोवृत्तियो का उत्थान हो सकता है और इसी विचार से प्रेरित होकर आपने अपने उस असीम ज्ञानको, जो कि उन्होने संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से उपार्जन किया था, भाषा-साहित्य के सांचे मे ढालना प्रारम्भ कर दिया । इसी कारण आपके काव्य में संस्कृत-साहित्य की झलक विशेष रूप से देख पड़ती है । संस्कृत-पदो तथा समासो का प्रयोग,

पुरातन विचारो की छटा, प्राचीन संस्कृत कवियो के भाव जैसे केशव की कविता मे देख पड़ते है वैसे अन्य भाषा के कवियो की कविता मे नहीं देख पड़ते। इसका मुख्य कारण ही यह है कि केशव न अपने सस्कृत-विद्या के ज्ञान को भाषा के साचे में ढालकर उसका स्वाद अपने समय के लोगा को चखाना चाहा था और इसी कारण आपकी कविता गूढ़ और क्लिष्ट हो गई।

महाकवि केशव जातीयता के भावो से भरे हुए थे। आप यावनी अत्याचारो को सहन नही कर सकते थे। जिसका दिक् दर्शन स्थान स्थान पर आपने अपने ग्रंथो मे किया है।

आपके समय मे हिन्दू-जाति की दशा बहुत ही शोचनीय हो रही थी। यावनी-शक्ति स हिन्दू बहुत ही दब रहे थे। नाना षड्यन्त्र उन्हे नाश करने के लिए रचे जा रहे थे, जिनपर विचार करने से आपका चित्त उद्विग्न हो रहा था। हिन्दू-जाति के जातीय कवि होने से उन्हे उस समय बुद्धदेव की भॉति माध्यमिक मार्ग का अवलंबन करना ही एक मात्र उपाय सूझ पडा, इसी कारण आपने मुग़ल सम्राट के प्रतिद्वन्द्वी मधुकर शाह तथा बीरसिहदेव के राज्य-पण्डित और कवि होते हुए भी अकबर के दर्बार से तटस्थ रहना उचित न जानकर उनके दर्बार के प्रधान पुरुषों से भी, अर्थात्—महाराज बीरबल टोडरमल, खानखाना, फैजी, अबुलफज़ल, महाराज मानसिंह आदि से मित्रता की, जिससे आवश्यकता पडने पर इन शक्ति-सम्पन्न पुरुषों से सहायता प्राप्त होसके। ओड़छा-वंश की भी परिस्थिति उस समय बड़ी ही विचित्र थी राज्य-वंश के कुछ लोग, जैसे महाराजा रामशाह आदि

तो अकबर के प्रभाव से प्रभावित होकर उसकी ओर झुक रहे थे। और कुछ लोग, जैसे—महाराज वीरसिंहदेव उसके परम विरोधी हो, उसे चुनौती दे रहे थे।

अकबर की कराल वक्रदृष्टि हिन्दू-पति महाराणा प्रतापसिंह तथा ओड़छाधीश महाराजा वीरसिंहदेव पर ही थी। वह चाहता था कि राजपूताना के अन्य हिन्दू राजाओं की भाँति या तो इन्हे दासत्व श्रृंखला मे बाँध लूं, या फिर इन्हे समूल ध्वस ही कर दूं। ऐसी दशा मे केशव के लिए यह कठिन समस्या थी कि ओडछा वश मे वह किसके आश्रित होकर रहे। केशवदासजी की बुद्धि का यह जाज्वल्यमान प्रमाण है कि ऐसी कठिन स्थिति मे भी वह महाराज रामशाह, महाराज वीरसिंहदेव तथा स्वय अकबर के दर्बार के सम्मान पात्र रहे और सदैव हिन्दू-हित-साधन करते रहे।

सोलहवीं शताब्दि में हिन्दू-जनता की रुचि तथा विचारों की भी धाराएं जान्हवी की सहस्र धाराओं के सदृश हो रही थीं।

कुछ तो मुग़ल दर्बार से मोहित हो रासविलास की रुचियो से प्रेरित थे, कुछ धर्म रुचि मे मग्न थे, कुछ सांसारिक झझटो से ऊबकर विरक्त चित्त हो रहे थे, कुछ साहित्य-सेवा मे निमग्न थे, कुछ प्रतिहिंसा के भावों से प्रेरित थे, कुछ दासोहं का पाठ पढ़ रहे थे!

इन सबों ही को जातीयता के नाते अपनाने के लिए केशव को यह अभीष्ट हुआ कि वे उनके सामने ऐसे साहित्य को प्रस्तुत करें जिसमें सभी के विचारो की तृप्ति हो सके। और आखिर

कार आपने वैसा ही किया और अपने अभीष्ट को अंत तक बहुत ही खूबी से निवाहा।

आपने (१) रसिक-प्रिया (२) रामचन्द्रिका (३) कवि-प्रिया (४) विज्ञान-गीता (५) राम-अलकृत मंजरी की रचना की है इनके अतिरिक्त आपका छंद-शास्त्र का एक ग्रंथ और बताया जाता है जो इस समय लुप्त हो रहा है। 'जहाँगीर-चन्द्रिका' के भी रचियता आप ही हैं। इसमें जहांगीर के दर्बार और दर्बारियो की चर्चा है। 'वीरसिंह चरित्र' के कर्ता भी केशव कहे जाते हैं पर इसकी कविता कहीं कही ऐसी शिथिल है कि इस समस्त ग्रथ को केशव-कृत मानने मे संदेह होता है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से वह बड़े महत्व का ग्रंथ है इसमें महाराज बीरसिंहदेव और अकबर के प्रिय मंत्री अबुलफजल के युद्ध का सविस्तार वर्णन है। महाराज बीरसिंह की दिनचर्य्या, राजनीति तथा उनके वंश का भी इस ग्रंथ मे सविस्तार वर्णन है। और ऐसा जान पड़ता है कि इस ग्रथ के कुछ अंश तो स्वयं केशवदास रचित हैं और कुछ अन्य किसी कवि ने केशव के नाम से लिखकर मिलाये हैं। सम्भव है कि मूल ग्रंथ केशवदास ही का रचा हो और किसी कारण वश उसके कुछ अंश स्थान स्थान पर समय के फेर से नष्ट हो गये हो और उनकी पूर्ति किसी ने अपनी रचना द्वारा की हो क्यो कि कवित्तों में तो केशव की

काव्य-छटा प्रत्यक्ष देख पड़ती है; किन्तु अन्य दोहे और चौपाइयों की रचना इतनी शिथिल है जो केशव-कृत नहीं कही जा सकती।

केशवदासजी का सबसे प्रथम ग्रंथ रसिक-प्रिया है जो संवत् १६४८ विक्रमी में बना :—

संवत् सोरह सै बरस, बीते अरतालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी, वार बरन रजनीस॥

केशवदासजी ने यह ग्रंथ महाराज वीरसिंहदेवजी के बड़े भाई महाराज इन्द्रजीतसिंहजी के अनुरोध से लिखा था। यद्यपि केशवदासजी महाराज मधुकरशाह के सभी पुत्रों के कृपा-पात्र थे, परन्तु महाराज इन्द्रजीतसिंह की केशव के प्रति असीम भक्ति थी। उन्हों ने आपको अपना गुरु माना था।

रसिक-प्रिया में राजधानी तथा राजवंश का वर्णन करते हुए केशवदासजी ने ग्रंथ-निर्माण करने का भी कारण लिखा है इसमें आपने नवरस, नायिका जाति, नायिका-भेद, चारों प्रकार के दर्शन, वियोग-शृंगार चारों वृत्तियाँ आदि का वर्णन किया है।

आपने अपना दूसरा ग्रंथ भी इन्हीं महाराज इन्द्रजीतसिंह के प्रीत्यर्थ प्रकाण्ड पाण्डित्य से राम-चरित्र वर्णन करते हुए रामचन्द्रिका नामक सं० १६५८ में लिखा है, यथा—

सोरह सै अट्ठावनो, कातिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीन्हो अवतार॥

केशवदासजी के ग्रंथों में यह ग्रंथ सर्वोपरि है नाना प्रकार के छंदों से यह ग्रंथ परिपूर्ण है। कवि के असीम विद्वत्व का यह

सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह ग्रंथ उन्तालीस अध्यायों में समाप्त हुआ है। इसमें केशवदासजी ने रामचन्द्र की उत्पति के उपरान्त से वर्णन कर लव-कुश के युद्ध तक और फिर अंत में आठों पुत्रों और भतीजों को राज्य के बांटे जाने तक वर्णन किया है।

दृश्यों और मनोभावों के वर्णन करने की केशव की शैली अनूठी है। अयोध्या का वर्णन, राज-सभा का दिक्दर्शन, बाण और रावण का संवाद, धनुष-यज्ञ का वृत्तान्त, भरत को भागीरथी से समझवाना रावण के मंदिर का वर्णन, मुंदरी और सीताजी का मिलन, लङ्का-दहन का वर्णन, लव-कुश द्वारा स्वजाति द्रोही विभीषण को फटकरवाना सीताजी के अग्नि-प्रवेश का वर्णन आदि ऐसे वर्णन हैं जिनको पढ़कर हृदय अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करने लगता है। आपके वर्णन इतने स्वाभाविक और मनोरम होते हैं कि देखते ही बनता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति निरीक्षणता में आप पूर्णतया सिद्ध-हस्त थे। राजसी ठाट और न्याय नीति का वर्णन भी आपने अति उत्तमता से किया है और यह आपके लिए कुछ कठिन भी नहीं था, क्योंकि आप सदैव राजाओं ही में तो रहते थे।

आपका तीसरा ग्रंथ है—कवि-प्रिया। यह ग्रथ आपने सं० १६५८ ही में रचा था यथा —

> प्रकट पंचमी को भयो, कवि-प्रिया अवतार।
> सोरह सै अट्ठावनो, फागुन सुदि बुधवार॥

यह ग्रंथ भी आपने महाराज इन्द्रजीतसिंह के प्रीत्यर्थ उनकी प्रीति-पात्री और अपनी शिष्या प्रवीणराय के लिए रचा

था। प्रवीणराय स्वयं काव्य करती थी और गान-विद्या में पारगत थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्व का है, क्योंकि इसमे केशव ने ओड़छा के राज-वंश और अपने वंश का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है। तथा महाराज इन्द्रजीत के दर्बार का भी विस्तृत वर्णन किया है। केशवदासजी ने प्रवीणराय को, महाराज इन्द्रजीत की छः प्रमुख गायिकाओं में जिनके कि नाम ऊपर कह आये हैं, सब से शिरोमणि बताते हुए उसकी तुलना रमा, उमा और सरस्वती से की है; यथा :—

नाचति गावति पढति सब, सबै बजावत बीन।
तिनमें करत कवित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन॥
रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीयकर, रमा कि राय प्रवीन॥
राय प्रवीन कि शारदा शुचि रुचि रंजित अंग।
बीणा पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग॥
वृषभ वाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवीन।
शिवसँग सोहै सर्वदा, शिवा कि राय प्रवीन॥
सविता जू कविता दई, ताको परम प्रकाश।
ताके काज कवि-प्रिया, कीन्हीं केशवदास॥

इस ग्रंथ में सत्रह अध्याय हैं। इसमें आपने कविता के दूषण, कवियों के गुणदोष, कविता की जांच, अलंकार आदि और अन्तमें चित्रकाव्य लिखा है। यह ग्रंथ वास्तव में अति उत्कृष्ट है। पिंगल-शास्त्र की बातें इस ग्रन्थमे आपने बड़ी ही खूबी से समझाई हैं। और इसके पढ़ने से कविता के सम्बन्ध की बहुत कुछ बातें मनुष्य जान सकता है। वास्तव मे कविता

सीखने वाले व्यक्तियो के लिए यह ग्रथ बडा ही उपयोगी है। इसमे आपने अपने आचार्यत्व को एक प्रकार से पूर्णरूप से प्रदर्शित कर दिया है। और यही कारण है कि आप आजकल भाषा-काव्य के श्रद्धेय आचार्य माने और पूजे जाते हैं।

आपका चौथा ग्रथ 'विज्ञानगीता' है। इसे आपने स० १६६७ में हिन्दूकुल-गौरव-महाराज बीरसिंहदेव की प्रार्थना पर उनके लिए लिखा था, यथा:—

सोरह सै बीते बरस, बिमल सतसठा पाय।
भयी ज्ञानगीता प्रकट, सबही को सुखदाय॥

इसमे इक्कीस अध्याय हैं। यह अध्यात्म विषय का ग्रथ प्रबोध-चन्द्रोदय की भाँति है। प्रथम बारह अध्यायो मे इसमे महामोह और विवेक की लड़ाई का वर्णन है। और शेष नव अध्यायों मे ज्ञान कहा गया है। जोकि बहुत ही मनोहर और उपदेश-प्रद है।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त केशव की बहुत सा स्फुट काव्य भी है, जो बहुधा बुंदेलखण्डीय लोगों की जिह्वा पर रहता है और जिससे बहुत कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी शोध मिलता है, यथा:—

याचक सब भूपति भये, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भयो, गयो बीर वर देन॥

❀ ❀ ❀

इत चम्बल उत नर्वदा, इतै जमुन गढ तीस।
ह्वै प्रसन्न कवि केशवै, शाह किये बकशीस॥

❀ ❀ ❀

आशुतोष औघड़दानी शिवजी महाराज के दरिद्ररूप का वर्णन करते हुए उनके महादान पर आश्चर्य कर केशवदासजी कहते है--

"साँप के कुण्डल, माल कपाल,
जटान के जूट रहे जुटियाते।
खाल पुरानी, पुरानोइ बैल,
सो और की ओर कहै विष-माते॥
पार्वती पति - सम्पति देख,
कहै यह 'केशव' शम्भु मताते।
आप तो माँगत भीख, भिखारिन,
देत दई, मुख माँगो कहाँ ते॥"

विरह-विकला नायका मे शिवका भ्रम कराते हुए रतिनाथ को चेतावनी दे आप कहते है .—

गंग नही, शिर मोतिन माँग है,
काल नही, शिर केश विशाल है।
कंठ न नील, अभूषण ओप है,
चन्द्र नही, यह उन्नत भाल है॥
विभूति नही, मलया यहै 'केशव',
ध्यान नही, पिय काज बिहाल है।
एरे मनोज, सम्हार के देखले,
शंभु न होय, वियोगिनी बाल है॥

केशवदासजी की कविता में भावों की प्रौढ़ता अधिक है, आपने प्रत्येक विषय पर विशद काव्य किया है। आपका पाण्डित्य वास्तव में सराहनीय है। अनेक स्थलो पर तो आपने ऐसा हृदय-

माही वर्णन किया है कि पढ़ते पढ़ते हृदय गद्गद होजाता है। दृश्यो तथा मनोभावो के वर्णन करने की आपकी शैली ही अनूठी है। स्वाभाविक कवि होने के कारण तथा प्रकृति निरीक्षणता का भली प्रकार ज्ञान होने के कारण, आपकी उपज बड़ी ही उत्तम होती थी और यही कारण है कि आपकी कविता इतनी उत्कृष्ट हुई है। पाठकों के मनोरजनार्थ कुछ ऐसे हो स्थलो का वर्णन कर के हम प्रबन्ध को समाप्त किया चाहते हैं—

(कवि--प्रिया)

"कवि-प्रिया मे शीश फूल वर्णन जो कि केशवदासजी ने सन्देहालंकार मे किया है उसे हम उदाहरण मात्र को यहाँ उद्धृतकरतेहैं—

कैधौं श्याम घन में प्रकाश है विभाकर को,
कैधौ अन्धियारी रैन मध्य आभा इन्द की।
कैधौ गुरुगिर के शिखर चढ वाखो दीप,
यमुना जल पै किधौ झाँई अरविन्द की॥
काली के कपाल पै परम पद केशौदास,
कैधौं शेष शीश पै, मनि है फनिंद की।
तेरे शीश शीशफूल शोभा इम देत जैसे,
माननी के पाँय परै मूरत गुविन्द की॥

(विज्ञान गीता)

विज्ञान-गीता के अन्तिम अध्याय मे आपने योम का बहुतही मनोहर वर्णन किया है। देखिए —

निसि-बासर बस्तु-बिचारहिकै,मुख साँचु हिए करुनाभनु है।
अघ-निग्रह, संग्रह धर्म कथानि, परिग्रह साधुनि को गनु है॥

कहि 'केशव' भीतर जोग जगै, अति बाहेर भोगनिसों तनु है।
मन हाथ सदा जिनके तिनको बनुही घरु है घरुही बनु है॥

एक स्थान पर आपने सखी से सखी की उक्ति कहते हुए कितना सुन्दर वर्णन किया है; पाठक देखें—

सुन्दरता पय जावक पावक,
पीक हिये नख चंद नये हैं।
चन्दन चित्र सुधा, विष अञ्जन,
टूटा सबै मणि हार गये हैं॥
"केशव" नैननि नींद मई,
मदिरा मद घूमत, मोह मये हैं।
केलि के नागरि नागर प्रात,
उजागर सागर रूप भये हैं॥

इस में आपने यह दरसाया है कि रति के अन्त मे नायक और नायिका सिन्धु के रूप होगये हैं, यानी सुन्दरता पय (जल) है जावक (पावक बड़वानल) है। नायक के हृदय की पीक तथा नायिका के हृदय के नख अति नवीन चन्द्रमा हैं चन्दन में मिल चित्रित अङ्ग सुधा है। अंजन विष है केलि मे टूटे हुए मणिहार रत्न हैं आलस मदिरा है। इत्यादि एक ही छंद मे इतने उत्तम भावों का समावेश कर देना महाकवि केशवदासजी की ही शक्ति का काम था। और फिर भी कितने सुन्दर भाव हैं कि देखते ही बनता है।

हनूमानजी जिस समय रावण के मन्दिर मे पहुचते हैं और वहां जो दृश्य देखते हैं उसका अनुपम वर्णन केशव ने

किया है। रावण के प्रति महावीरजी का शत्रु-भाव था उसका भी कवि ने पूर्ण ध्यान रक्खा है :—

तब हरि रावन सोवत देख्यो।
मणि मय पलिका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावै।
बिच बिच आवझ बीन बजावें॥
मृतक चिता पर मानहु सोहै।
चहुँ दिश प्रेत वधून बिमोहै॥

\+ × ×

कहूँ किन्नरी किन्नरी ले बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यच्छनी पच्छनी लै पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी लै नचावैं॥
पियैं एक हाला गुहैं एक माला।
बनी एक बाला नचैं चित्र शाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावैं सुआ लै शुकी सारिका को॥
फिस्यौ देखि कै राजशाला सभा को।
रह्यौ रीझि कै बाटिका की प्रभा को॥
फिस्यौ बीर चौहूँ चितै सुद्ध गीता।
बिलोकी भली-सिसुपा मूल सीता॥
धरे एक बेनी-मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पङ्क सों काढ़ि डारी॥
सदा राम रामै रटै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राक्षसी दुःखदानी॥
असी बुद्धि सो चित्त चिंता न जानौ।
किधौं जीह दन्तावली में बखानौ॥

किधौं घेर के राहु नारी न लीनी ।
कला चन्द्रकी चारु पीयूष भीनी ॥
किधौं जीव की जोति माया न लीनी ।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥
मनौ संवरस्त्रीन मे काम बामा ।
हनूमान ऐसी लखो राम रामा ॥

अशोक वृक्ष से अङ्गार मांगने पर पल्लवो की ओट मे बैठे हुए हनूमानजी श्रीरामनामांकित मुद्रिका डाल देते हैं उस समय सीताजी के चित्त मे क्या क्या भाव उठते है और कैसे धीरे धीरे अग्नि कण के आभास से मुद्रिका की ओर सीताजी का ध्यान आकर्षित होता है । इस सजीव वर्णन को देखिए —

देखिदेखि के अशोक राज पुत्रिका कह्यो ।
देहि क्यो न आग मोहि अङ्ग आग ह्वै रह्यो ॥
ठौर पाय पौन पूत डारि मुद्रिका दई ।
आस पास देखि कै उठाय हाथ सों लई ॥

जब लगी सियरी हाथ ।
यह आग कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लखि तब ताहि ।
मन जटित मुँदरी आहि ॥
जल बीच देख्यो नाव ।
मन पर्‍यो संभ्रम भाव ॥
आवाल ते रघुनाथ ।
यह धरी अपने हाथ ॥
बिछुरी सो कौन उपाव ।
को आनियो यह ठाव ।

सुधि लहौं कौन उपाउ ॥
अब काहि पूँछन जाउ ।
चहुँधा चितै सह त्रास ॥
अवलोकियो आकास ।
तहँ वृक्ष शाखा पीठ ॥
इक पस्यो बानर दीठ ।
तब कह्यो को तूँ अहि ॥
सुर असुर मोनन् ताहि ।
कै यत्त पत्त विरूप ।
दश कण्ठ बानर रूप ।
कह आपनो तूँ भेद् ।
अति चित्त उपजत खेद् ।
कहि बेगि बा र पाप ।
नतु तोहि देहौं शाप ।

अब लंका-दहन का भी वर्णन देखिए :—

जटी अग्नि ज्वाला, अटा श्वेत हैं यों ।
शरत् काल के मेघ, सध्या समै ज्यों ॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं ।
मनौ स्वर्ण की किंकनी, नाग साजैं ॥
लसै पीत छत्री, मढ़ी ज्वाल मानौ ।
ढ़ंके ओढ़नी लंक वक्षोज जानौ ॥
जरै जूह नारी चढ़ीं, चित्र सारी ।
मनौ चेटिका में, सती सत्य धारी ॥

लव-कुश के युद्ध-वर्णन करते समय स्वजाति-द्रोही विभीषण को लव के द्वारा केशवदासजो ने खूब ही धिक्कार दिलायी

है, जिससे यह भली भांति पता चलता है कि केशवदासजी का चित्त जातीयता के भावों से भरा था और आप सदैव जाति-हितों की रक्षा करना चाहते थे। जो व्यक्ति स्वार्थ-साधन के लिए जातीयहितों का नाश करने वाला होता है, उसे आप बड़ी ही घृणा की दृष्टि से देखते थे और स्वजाति-द्रोही को तो आप महा पापी और नारकीय पुरुष मानते थे। उसके संसर्ग और सहवास-मात्र को आप पाप समझते थे। वास्तव मे आपकी यह सूझ बड़ी ही उत्कृष्ट है आपके अतिरिक्त और किसी को क्या, संस्कृत तक के कवियों को यह बात नहीं सूझी और सभी ने विभीषण के, केवल इसी कारण से कि वह राम-भक्त था, प्रशंसा के पुल बाध दिये है, किन्तु केशव न्याय-परायण और धार्मिक महाकवि थे। सत्य बात को निर्भीकता से कहने मे आप कभी नहीं हिचकते थे, आप की रचनाएं ही इसका प्रमाण हैं:—

लवः—

आउ विभीषन तू रन दूषन।
एक तुही कुल को कुल भूषन॥
जूझि जुरे, जे भले भए जी के।
सत्रुहि आय मिले तुम नीके॥
देव वधू जबहीं हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के डर आए।
छुद्र, सबै कुल-छिद्र बताए॥

जेठो भैया, अन्नदा, राजा, पिता-समान ।
ताकी तैं पतनी करी, पतनी मातु-समान ॥
को जानै कै बार तू, कही न ह्वै है माय ।
सो तैंने पतनी करी, सुनु पापिन को राय ॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है ।
रघुबंसिन पाप नसावत है ॥
धिक तो कहँ तू अजहूँ जु जियै ।
खल, जाय हलाहल क्यों न पियै ॥
कछु है अब तो कहँ लाज हिये ।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥
अब जाइ कै रोष कि आगि जरौ ।
गर बाँधि कै सागर बूडि मरौ ॥

कहा कहौं हौ भरत को, जानत है सब कोइ ।
तो-सो पापी संग में, क्यों न पराजय होइ ॥

सीताजी के अग्नि प्रवेश वर्णन मे केशवदासजी के असीम गूढ़ विद्वत्व तथा अभूत पूर्व कल्पना-शक्ति का जो परिचय मिलता है वह वर्णनातीत है । पाठक स्वयं देखें:—

सवस्त्रा सबै अंग शृंगार सोहैं ।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं ॥
पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता ।
लसै अग्नि के अङ्क यों शुद्ध सीता ॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी ।
कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी ॥
मनौ रत्न-सिंहासनस्था शची है ।
किधौं रागना राग पूरे रची है ॥
गिरा-पूर में है पयो देवतासी ।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी ॥
किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै ।
किधौं पद्म के कोस पद्मा विमोहै ॥
कि सिंदूर-सैलाग्र में सिद्ध-कन्या ।
किधौं पद्मिनी सूर-संजुक्त धन्या ॥
सरोजासना है मनो चारु बानी ।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी ॥
मनौ औषधी-वृंद में रोहिनी-सी ।
कि दिग्दाह में देखिए जोगिनी सी ॥
धरा-पुत्र ज्यों स्वर्नमाला प्रकासै ।
मनो ज्योतिसी तच्छका भोग भासै ॥

आसावरी मानिक कुंभ सोभै,
अशोक-लग्ना बन-देवता सी ।
पालास-माला-कुसुमालि मध्ये,
बसंत-लक्ष्मी सुभ-लच्छना सी ॥
आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री,
मनो बिराजै अति चारु बेखा ।

संपूर्ण सिंदूर प्रभास कैधौं,
गणेस भाल-स्थल चन्द्र-रेखा ॥

इत्यादि कहाँ तक कहा जावे आपके समस्त ग्रंथ अभूत-पूर्व काव्य से भरे पड़े हैं।

आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित है.—

(धनुष-यज्ञ)

दोहा

खण्ड परे को शोभिजै, सभा मध्य को दंड।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरन हार बरि बंड ॥ ॥ १५ ॥

सवैया

शोभित मंचन की अवली गजदंत मयी छवि उज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई ॥
ता महँ केशवदास विराजत राज कुमार सबै सुखदाई।
देवन सों जनु देव सभा शुभ सीय-स्वयंवर देखन आई ॥१६॥

दोहा

नवति मंच पंचालिका, कर संकलित अपार।
नाचति है जनु नृपति को, चित्त-वृत्ति सुकुमार ॥१७॥

घनाक्षरी

पावक पवन मणि पन्नग पतग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताये हैं॥
अजर अमर अज अङ्गी औ अनगी सब,
वरणि सुनावै-ऐसे कौन गुण पाये हैं।
सीता के स्वयबर को रूप अवलोकिवे को,
भूपन को रूप धरि विश्व रूप आयेहैं॥

षट्पद

अरुणगात अति प्रात पद्मनी प्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक-प्रेम मय॥
परि पूरण सिंदूर पूर कैधौं मगल घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥
कै शोणित कलित कपाल यह, किलक पालिका काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत, दिग्भामिनि के भालको॥१७॥

(परशुराम–वाद)

दोहा

अति कोमल नृप सुतन की, ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दशकंठ के, काटहुँ कंठ कुठार॥६॥

मत्तगयंद

बांधि कै बाँध्यो जो वालि बली पलना परलै सुत को हितठाढ़े।
है हयराज लियो गहि केशव आयो हो चुद्र जो छिद्रनि डाढ़े॥

बाहिर काढि दियो बलि दासिन जाइ परे ओ पताल को वाढे ।
तो को कुठार बडाई कहा कहि ता दश कठ के कठन काढे ॥

सोरठा

यद्यपि है अति दीन, मोहि तऊ खल मारने ।
गुरु अपराधहि लीन केशव क्यों करि छांडिये ॥८॥

चन्द्रकला छंद

बरवाण शिखीन अशेष समुद्रहि सोखि सखा सुखही तरिहौं ।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै फिर पंक कलंकहि की भरिहौं ॥
भल भूजि कै राकस खाकस कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं ।
सितकंठ के कंठन को कठुला दशकठ के कठन को करिहौं ॥

(पंचवटी–वर्णन)

सवैया दुर्मिल

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी नर है जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीच घटी हु घटी जग जीव यतीन की छूटी तटी ॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रगटी गुरु ज्ञानगटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति-नटी, गुण धूर जटी बन पचवटी ॥

दोहा

सीता के पद-पद्म को, नूपुर पट जनि जानु ।
मनहुँ कस्यो सुग्रीव घर, राज श्री प्रस्थानु ॥

दोहा

सुखदा सिखदा अर्थदा, यशदा रस दातारि ।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥८३॥

बहु बरणा सहज प्रिया, तमगुण हरा प्रमाण ।
जग-मारग दरशावनी, सूरज-किरण समान ॥८४॥
श्री पुरमे वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
कहि मुंदरी अब तियन को, को करिहै परतीति ॥८५॥

दोहा

तुम पूंछत कहि मुद्रिकै, मौन होति यहि नाम ।
कङ्कण को पदवी दई, तुम बिन या कहं राम ॥

भावार्थ—विरह मे यह दशा होगई है कि कङ्कण के स्थान में इसे पहिनते हैं ।

घनाक्षरी

भौरनी ज्यों भ्रमत रहति वन बीथकानि
सिंहनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहतिहै ।
हरिणी ज्यों हेरति न केशरी के काननहि,
केका सुनि ब्याली ज्यों बिलान ही चहतिहै ॥
पिउ पिउ रटन रहति चित चातकी ज्यों,
चन्द चिते चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है ।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसो,
सूरति न सीताजू की मूरति गहति है ॥

दोहा

(राम)

कौनहि दीजै दान भुव, हैं ऋषिराज अनेक ।
देहु सनाढ्यन आदि दै, आये सहित विवेक ॥

उपेन्द्रवज्रा

श्रीराम—

कहौ भरद्वाज सनाढ्य को है।
भये कहाँ ते सब भव्य सो है॥
सुने सब विप्र प्रभाव भोने।
तजे ते क्या ये अति पूज्य कीने॥

भरद्वाज—

गिरीश नारायण पै सुनो यों।
गिरीश मो सों जो कही कहौं त्यों॥
सुनो सो सानातनि साधु चर्चा।
करो सो जाते तुम ब्रह्म-अर्चा॥

मोटनक छन्द

नारायण—

मैं ते जल नाभि सरोज बढ्यो,
ऊँचो अति उग्र अकाश चढ्यो।
ताते चतुरानन रूप रयो,
ब्रह्मा यह नाम प्रकट्ट भयो।
ताके मन ते सुत चारि भये,
सो है अति पावन वेद मये।
चौहू जन के मनते उपजे,
भुव देव सनाढ्य ते मोहि भजे।
दीन्हो तुमहीं तिन जो हित जू,
ह्वै हौ तुम ब्रह्म पुरोहित जू।

गौरी छंद

तातें ऋषिराज सबै तुम छाँडो,
भूदेव सनाढ्यन के पद माँड़ो।
दीन्हो तुमहीं तिनको बर रूरे,
चौहू युग होहु, तपोबल पूरे।

उपेन्द्रवज्रा छंद

सनाढ्य पूजा अघ ओघ हारी,
अखण्ड आखण्डल लोक धारी।
अशेष लोकावधि भूमिचारी,
समूल नाशैं नृप दोष कारी।

दोहा

पादारघ हमको दियो, मथुरा मंडल आप।
बासों बसन न पावहीं, बिना बसे अति पाप॥

राम—

रक्षहिं गे शत्रुघ्न सुत, ऋषि तुमको सब काल।
वासुदेव ह्वै रक्षिहौं, हँसि कह दीनदयाल॥

भुजंगप्रयात छंद

चलौ बेगिशत्रुघ्न ताको सँहारो, वहै देश तौ भावतो है हमारो।
सदा शुद्धवृन्दावनो भूमि लौ है, तहा नित्य मेरी विहार स्थली है॥
यहै जानि भूमें द्विजन्मान दीनी, बसै यत्र वृन्दा प्रियाप्रेम भीनी।
सनाढ्यानकी भक्तिजो जीय जागै, महादेव को शूल ताके न लागै॥

प्रमाणिका छंद

शत्रुघ्न—

सनाढ्य वृत्ति जो हरै, सदा समूल सो जरै।
अकाल मृत्यु सो मरै, अनेक नर्क सो परै ॥
सनाढ्य जाति सर्वदा, यथा पुनात नर्मदा।
भजैं सजैं जे सम्पदा, विरुद्ध ते असंपदा ॥

दोहा

मथुरा-मण्डल मधुपुरी, केशव स्ववश बसाइ।
देखे तब शत्रुघ्न जू, रामचन्द्र के पाइ ॥

सवैया

तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसेहु ता कहँ शत्रु न मित्र, सुकेशवदास, उदास न बाधै ॥
शत्रु समीप परे त्यहि मित्र से तासु परे जो उदास कै जोवै।
विग्रह सन्धि न दाननि सिंधु, लौं,लै चहुँ ओरन तौ सुखसोवै ॥

रूपकांता छंद

अशेष पुण्य पाप के कलाप आपने बहाइ।
विदेह राज ज्यो सदेह भक्त राम को कहाइ ॥
लहै सभक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि नाहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जो रामचंद्र चंद्रकाहि ॥

—:o:—

रसिक-प्रिया

(प्रच्छन्न प्रेम भिसारिका)

कवित्त

नैनन की अनुराई बैनन की चतुराई,
गात की गोराई ना दुरति द्युति चाल की।
आपने चरित्रन के चित्रित विचित्र चित्र,
चित्र-ज्यों सोहै साथ पुत्रिका गुवालकी॥
चन्द्र के समान चारु चाय सों चढ़ी फिरति,
करिके तिहारे मग नैनन को पालकी।
कीजे पय पान अरु खैये पान प्राण प्यारे,
आय है जू आई अनंगको बाल कालकी॥

(प्रकाश उन्माद)

केसव चौंकनि सो चितवै छिति,
पाँयरकै तरकै तकि छाँहीं।
बूझिये और कहै मुख और,
सु और की और भई छिन माँहीं।
दीठि लगी किधौं बाय लगी,
मनभूलि परयो कै करयो कछु काँहीं।
घूँघट की घटकी पटकी,
हरि आज कछू सुधि राधिकै नाँहीं।

(प्रकाश सठ)

कवित्त

कानन के रँगे रग नैनन के डोलता संग
नासा अग्र रसना के रस ही समाने हौ।
और कहा कहौ गूढ मूढ हौजू जानि आहु,
"कशौदास" प्रौढ़ रूढ़ नीके करिजाने हौ॥
तन आन, मन आन, कपट-निधान कान्ह,
साँची कहौ मेरो आन काहे को डराने हौ।
वे तो है बिकानी हाथ मेरे, हौ तुम्हारे हाथ,
तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ॥

(प्रच्छन्न व्याधि)

सवैया

उनके तन तापते तापिये ह्यां,
इनके तन तो अँसुवान अन्हैये।
व्हां उनके उडजैये उसासनि,
ह्यां इनके उपचार जुड़ैये॥
'केशव' वे वृषभानि लली,
नंदलाल न एपै निदानन पैये।
एक ही बैर दुहुन कहा भयो
माई यहै चलि देखि डरैये।

(प्रसंग विध्वंस)

कवित्त

घनन को घोर सुनि मोरन के सोर सुनि,
सुनि सुनि केशव अलाप अली जनकों

दामिनी दमक देख दीप की दिपति देखि,
सुख सेज देखि देखि सुन्दर सुवन को ॥
कुंकुम की वास घनसार की सुवास भयो
फूलन की वास मन फूलिके मलन को।
हँसि हँसि बोले दोऊ अनही मनाए मान,
छूटि गयो एक बार राधिका रमन को ॥

(प्रिय को प्रच्छन्न करुणा विरह)

सवैया

है तरुनाई तरंगिनि पूर अपूरब पूरब राग रंगे पय।
'केशवदास' जहाज मनोरथ संभ्रम विभ्रम भूर भरे भय ॥
तर्क तरंग तरंगित तुंग तिमिंगिल सूल बिसालनि के चय।
कान्ह कछू करुणामय हैं, सखितैंही किये करुना वरणालय॥

(विज्ञान गीता)

छप्पय

ज्योति अनादि अनन्त अमित अद्भुत अरूप गुनि।
परमानँद पावन प्रसिद्ध, पूरण प्रकाश पुनि ॥
नित्य नवीन निरीह, निपट निर्वाण निरञ्जन।
सम सर्वंग सर्वज्ञ चिन्त चिन्तत विद्वज्जन ॥
वरणी न जाय देखी सुनी नेति नेति भाषत निगम।
ताको प्रणाम केशव करत अनुदिन करि संयम नियम ॥

सवैया

पेटनि पेटनि ही भटक्यो बहु पेटनि की पदवीन नक्यो जू।
पेट ते पेट लियो निकस्यो, फिर के पुनि पेटही सों अटक्यो जू ॥

पेट को चेरो सबै जग, काहू के, पेट न पेट समात तक्योजू।
पेट के पंथन पावहु 'केशव' पेटहि पोषत पेट पक्योजू॥

भुजंग प्रयात

गिरशचन्द्र की चन्द्रिका चारु हाशे।
महापातकी ध्वाँत धाम • प्रणाशे॥
फणी दग्ध भावे अनङ्गारि अगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
धरा मध्य ब्रह्माण्ड को भेदि आई।
जगज्जीव उद्धार को वेद गाई॥
मही निर्गुने स्वप्रकाशे विहंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
तजे देह देही पयो मध्य न्हाहीं।
ततो भेदि कै न्याइ ब्रह्माण्ड जाहीं॥
भवच्छेदि, कै तिव्र तुंगे तरंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
चले निश्चले निर्मले निर्विकारे।
असंसार संसार मध्येक सारे॥
अमेय प्रभावै अनते अनंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
सदा सर्व दोषादि संसोष कारे।
महा मोह मातंग अग प्रहारे॥
चिदानंद भावेधि शांते सुरंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
धरा लोक पाताल स्वर्ग प्रकाशे।
मनो वाक कायाज कर्मप्रणाशे॥

जगन्मातु भावे सदा शुद्ध अंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥
गिराधौ रमाधौ उमाधौ अनन्ना।
स्मरे देवि ता नाम ब्रह्माण्ड रत्ना॥
कहे राइ केशौ ववेकी प्रसंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥

—:o:—

(अबल वर्णन)

दोहा

पंगु गुंग रोगी बणिक, भीत भूख युत जानि।
अंध अनाथ अजादि शिशु, अबला अबल बखानि॥

कवित्त

खात न अघात सब जगत खवावतु है,
द्रौपदी के साग पात खात ही अघाने हौ।
केदार नृपति सुता के सतिभाय भये,
चोर ते चतुरभुज चहूँचक जाने हौ॥
मांगनेऊ द्वारपाल दास दूत सुत सुनौ,
काठ माहि कौन पाठ वेद न बखाने हौ।
और है अनाथनि के नाथ, कोऊ यदुनाथ,
तुम तो अनाथनि के हाथ ही बिकाने हौ॥

(गुणाधिकोपमा)

दोहा

अकिंचन हू ते अधिक गुण, जहां वरणियुत होय।
तासों गुण अधिकोपमा कहत सयाने लोय॥

कवित्त

वे तुरंग श्वेत रंग संग एक ये अनेक,
है सुरंग अंग रंग पै कुरंग मीत से।
ये निशंक अंक यज्ञ वे सशंक केशौदास
ये कलंक रक वे कलंक ही कलीत से॥
वे पिये सुधा हिये सुधा निधीश के रसै,
जु सांचहू सुनीत ये पुनीत वे पुनीत से।
देहिये दिये बिना बिना दिये न देहिवे,
भये नहैं न होंहिगे न इन्द्र इंद्रजीत से॥

(लक्षणोपमा)

दोहा

लक्षण लक्ष्य जु बरणिये, बुधिबल वचन विलास।
है लक्षण उपमा सु यह, वरणत केशवदास॥

कवित्त

वासो मृग अक कहै तोसों मृग नैनी सबै,
वासों सुधाधर तोहू सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विज राजि राजै,
वह कलानिधि तो हू कला कलित बखानिये॥

रतनाकर के दोऊ केशव प्रकाश कर,
अम्बर विलास कुवलय हित मानिये।
वाके शीत कर कर तू ही सोना शोन कर
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये॥

(कटि, उदर, रोमावली वर्णन)

दोहा

कटि अति सूक्ष्म उदर द्युति चल दल दल उपमान।
रोमलता तम धूम अति, चारु चिटोन समान॥

कवित्त

भूत की मिठाई जैसी साधु की झुठाई तैसी,
स्यार का ढिठाई ऐसी छाए छहूँ ऋतु है।
धीरा कैसो हास केशादास दासी कैसो सुख,
शूर की सो शक अक रंक कैसो वितु है॥
सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान गौरी,
गौर कैसो मान मेरे जान समुदित है।
कौने है सँवारी वृषभानु की कुमारी यह,
तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥

(रसना वर्णन)

दोहा

रसना कोमल वर्णिये, कोविद अमल अलोल।
केशव देवी रसनि की, रसहि श्रवण मृदु बोल॥

कवित्त

देखत ही आधेपल बाधी जाति बाधा सब,
राधा जू की रसना सरूप की सी रानी है ।
आछी आछी बातनि की जननी उगमगाति,
रसनि की देवी किधौं पचि पहिचानी है ॥
केशौदास सकल सुवास कीसी सेज किधौं,
सकल सुजानता की सखी सुखदानी है ।
किधौं मुख पंकज मे शक्ति को तौ सवै द्विज,
सविता की कविता की कविता निधानी है ॥

(मुख मण्डल वर्णन)

दोहा

अमल मुकुर सो वर्णिये, कोमल कमल समान ।
अकलंकित मुख वरणिये, चारु चद परिमान ॥

कवित्त

अहनि में कीन्हो गेह सुरन में, देख्यो देह,
शिव सो कियो सनेह जाग्यो युग चार्यो है ।
तपन मे तप्यो तप जलधि मे जप्यौ जप,
केशौदास वपुमास मास प्रति गार्यो है ॥
उडुगण ईश द्विज ईश औषधीश भयो,
यदपि जगत ईश सुधा सो सुधार्यो है ।
सुनि नंद नंद प्यारी तेरे मुख चंद सम,
चद पै न भयो कोटि छंद करि हार्यो है ॥

(शिर भूषण वर्णन)

दोहा

मॉग फूल शिर फूल सब, वेणीफूल बनाव।
रूप भूप जग ज्योति जनु, सूरज प्रकट प्रभाव ॥
मोतिन की लर शीश पर, शोभित है इहि भांति।
चारु चन्द्रमा की चमू घन मराल की पांति ॥

कवित्त

वेणी पिक वेणी की त्रिवेणी सी बनाय गुही,
कचन कुसुम रुचि लोचननि पोहिये।
केशौदास फैलि रही फूल शीश फूल द्युति,
फूल्यो तन मन मेरो न्याय हरि मोहिये ॥
वेदी जग मगतु जराय जर्यो ताकी ज्योति,
जीतो है अर्जीत उपमा न आन टोहिये।
मानो इन पॉवड़नि पॉव धरे आय दोऊ
साहत सुहाग शिर भाग भाल सोहिये ॥

(गति वर्णन)

दोहा

राज हंस कल हंस सम, अति गति मंद विलास।
महामत्त गजराज सी, वरणहुं केशौदास ॥

कवित्त

किधौं गजराजनि को राजति है अंकुश सी,
चरण विलासनि को आरस सजति है।

बलित अनंत गति ललित श्रृंगार बेलि,
फूले फल हाव भाव ।फलनि फलति है ॥
किधौं कलहंसनि की शंका सक "केशौदास",
किधौं राजहंसिनी की लाजसी लगति है ।
किधौं नंदलाल लोल लोचन की श्रृंखलाकि,
तेरी लोल लोचनि अलोल अंग गति है ॥

(सर्व भूषण वर्णन)

कवित्त

बिछिया अनौट बाँके घू घुरी जराय जडी,
जेहर छबीली क्षुद्र घंटिका की जालिका ।
सुन्दरी उदार पौंचो ककण बलय चूरी,
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका ॥
वेणी फूल शीश फूल कर्ण फूल माँग फूल,
खोटिला तिल कनक मोती सोहै बालिका ।
केशौदास नीलबास ज्योति जगमगि रही,
देह धरे श्याम सग मानौ दीपमालिका ॥

(निरोष्ठ)

दोहा

पढ़त न लागै अधर सों, अधर वरण त्यों मंडि ।
और वर्ण वर्णौ सबै, उपवर्गहि को छंडि ॥

कवित्त

लोक लीक नीकी लाज लोलत से नंदलाल,
लोचन ललिन लोल लीला के निकेत है।
सोहनि को शोच न संकोच लोका लोकनि को,
देत सुख ताको सखि दूनौ दुख देत है॥
केशौदास' कान्हर कनेर ही के कोरक से,
अँग रँग राते रँग अत अति सेत है।
देखि देखि हरि की हरिनता हरिननैनी,
देखत ही, देखौ नहीं, हियो हरि लेत है।

(मात्रा रहित)

दोहा

एकै स्वर जहँ वरणिये, अद्भुत रूप अवर्ण।
कहिये मात्रा रहित सो, मित्र चित्र आभर्ण॥

कवित्त

जग जग मगत भगत जन रस बस,
भव भय हर कर करत अचर चर।
कनक बसन तन असन अनल बड़,
बट दल बसन सजल थल थल कर॥

अजर अमर अज बरद चरन धर,
परम धरम गन बरन शरन पर।
अमल कमल वर वदन सदन जस
हरन मदन मद मदन कदन हर ॥

(एकाक्षर)

दोहा

एक आदि दै बरण बहु, बरणौ शब्द बनाय।
अपने अपने बुद्धि बल, समझौ सब कविराय ॥

यथा दोहा

गो गो गंगो गी अआ, श्री धी ह्रीं भी भानु।
भू वि ख स्व जा द्यो हि हा, नौ नौ सं भं मानु ॥

(द्व्यक्षर शब्द)

दोहा

रमा उमा वाणी सदा, हरि हर विधि सँग बाम।
क्षमा दया सीता सती वाकी रामा राम ॥

(त्र्यक्षर शब्द)

दोहा

श्रीधर भूधर केसिहा, केशव जगत प्रमाण।
माधव राघव कंसहा, पूरण पुरुष पुराण॥

(इत्यादि)

(अथ एक अक्षर)

दोहा

नोनी नोनी नो निनै, नोने नोने नैन।
ना ना न न ना ना न नै, न नु नूनै नू नैन॥

(दोय अक्षर)

हरि हीरा राही हर्यो हेरि रही ही हारि।
हरि हरि हौं हा हा ररौं, हरे हरे हरि रारि॥

(आधा एकाक्षर यथा)

के की के काकी कका, कोक कीक का कोक।
लोल लालि लो लैलली, लाला लीला लोल॥

गो गो गी गो गोग गज, जीजैं जीजी जोहि।
रूरे रूरे रेरु ररि, हा हा हू हू होहि॥

(इत्यादि)

इसी प्रकार आप की कवि-प्रिया मे बडी ही उत्कृष्ट कविता मिलती है। इन के अर्थ जानने के लिए पाठक गण श्रीहरचरणदास कृत या और कवि-प्रिया के भाषा टीका को देखे।

इनके अतिरिक्त आपने कपाट बद्ध गोमूत्रिका चक्र, अश्वगति चक्र, चरण गुप्त, चक्रबंध, सर्वतोभद्र, धनुष-बद्धमूल कमलबंध, पर्वतबंध डमरुबद्ध, आदि के रूप मे भी चित्र-काव्य की है उनके भी दो एक उदाहरण देकर इस प्रबन्ध को हम समाप्त करते है।

चरण गुप्त

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
छु	गी	सं	त	भ	का	व	दी

दोहा

इन्द्रजीत संगीत लै, किये राम रस लीन।
छुद्र गीत संगीत लै, भये काम वस दीन॥

धनुष बद्ध
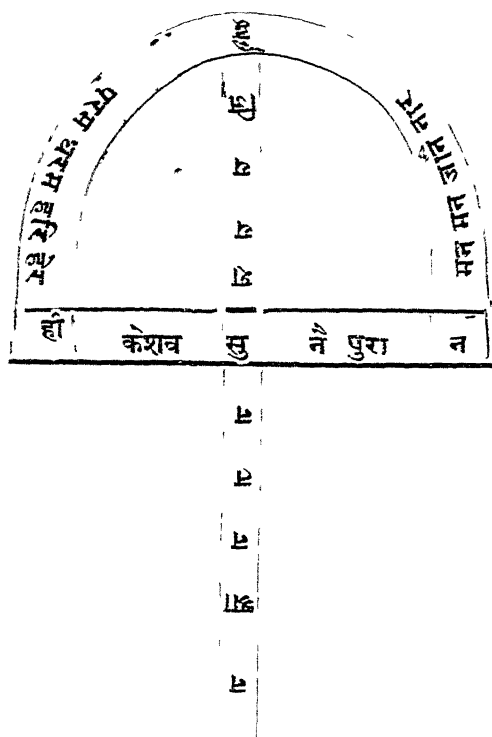
हीं केशव सु नै पुरा न

दोहा

परम धरम हरि हेर ही केशव सुनै पुरान।
मन मन जानै नार है, ऊियथश सनत न आान।

कविवर पं० बिहारीदासजी मिश्र

कविवर प० बिहारीदासजी मिश्र का जन्म सवन् १६५५ वि० के लगभग हुआ था। आप महा कवि केशवदासजी के ज्येष्ठ पुत्र तथा प० काशी नाथजी मिश्र के पौत्र थे। कविवर बिहारीदास जी के बाल्य काल के सम्बन्ध मे हमें कुछ विशेष बातें नही मालूम होसकी क्यो कि केशवदासजी की तरह आपने अपने सम्बन्ध मे अपनी रचनाओं मे विशेष रूप मे कुछ नही लिखा है। अस्तु जो कुछ भी बाते आपके वशजो से तथा आपकी रचनाओ से ज्ञात हो सकी है निम्न लिखित हैं —

केशव की मृत्यु के पश्चात, जो कि सम्भवत स० १६८० वि० के लगभग अनुमान की जाती है, कविवर बिहारीदासजी का ओडछे मे उतना आदर जितना कि आपके पूर्वजो का होता चला आया था, नही हुआ। इसके कई कारण हैं। प्रथम, जैसा कि केशव के बंशजो से पता चलता है कि बिहारीदास जी पर उनके नाना का, जो कि ग्वालियर के आस पास के किसी गांव के रहनेवाले थे, बाल्यकाल ही से अधिक प्रेम था और आप अधिक तर अपने नाना के यहा ही रहा करते थे। केशव की मृत्यु के पश्चात् आप अपनी शिक्षा आदि के सम्बन्ध मे कुछ अधिक दिनो तक वही रहे। वहाँ से लौटकर ओड़छा आने पर राज्य-दर्बार में

आपका यथेष्ट मान नहीं हुआ इसका कारण यह जान पड़ता है कि आपके चले जाने के पश्चात् किसी और कवि ने राज्य सभा में डेरा डाला हो और आप को लौटते देखकर उसने राज्य कर्मचारियों आदि से मिलकर यह प्रयत्न किया हो कि आपकी धाक फिर से न जमने पावै, क्योंकि अपने प्रतिद्वंदी के प्रति ईर्षा का होना स्वाभाविक ही है। दूसरे आपके वंशपरम्परा के वैभव को देखकर कुछ लोग आप से डाह करने लगे हों और आपका लौट आना उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुआ हो। तीसरे राज्य-दर्बार में आपकी कविता के पारखी राव न रह गये हों और आपकी बनिस्बत किसी अयोग्य व्यक्ति का अधिक सन्मान हो चला हो। अस्तु जो कुछ भी हो आपको विवश और दुखित हो स्वाभिमान की रक्षा के हेतु ओडछा छोड देना पडा था, जिसे आपने स्वयं भी अपनी सतसई में इस प्रकार स्वीकार किया है—

नहि पावस ऋतुराज यह, तजि तरवर मत भूल ।
अपत भये बिनु पाइहै, क्यों नव दल फल फूल ॥ ५८६ ॥
जिन जिन देखे वे कुसुम, गई सुबीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥ ५९२ ॥
बहंकि बडाई आपनी, कत राचति मतभूल ।
बिनु मधु मधुकर के हिये, गडै न गुडहर फूल ॥ ५९३ ॥
दिन दश आदर पाय कै, करिले आप बखान ।
जौ लगि काग सराध पख तौ लगि तो सम्मान ॥ ६०१ ॥
मरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समै के फेर ।
आदर दै दै बोलिये बायस बलि की बेर ॥ ६०२ ॥
करलहि सूंघि सराहि हू, सबै रहे गहि मौन ।
गंधी गंधगुलाब को, गवई गाहक कौन ॥ ६०५ ॥

वे न यहां नागर बडे जिन आदर तो आब ।
फूल्यो अन फूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब ॥ ६०६ ॥
चले जाहु ह्यां को करै, हाथिन को व्योपार ।
नहि जानत यहि पुर बसत, धोबी और कुम्हार ॥ ६०८ ॥
करि फुलेल को आचमन, मोठो कहत सराहि ।
रे गन्धी मति अंध तू, अतर दिखावत काहि ॥ ६१० ॥
शीतलता रस बास को, घटै न महिमा मूर ।
पीनस वारे ज्यों तज्यो सोरा जानि कपूर ॥ ६६७ ॥
बडे न हूजे गुणन बिन, विरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ्यो न जाय ॥ ६६८ ॥
सगति सुमति न पावई, परे कुमति के धध ।
राखौ मेलि कपूर मे, हाग न होय सुगन्ध ॥ ६७१ ॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सन्मान ।
भलो भलो करि छांडिये, खोटे ग्रह जपदान ॥ ६९६ ॥

इत्यादि—

ओडछा छोडने के पश्चात् आप प्रथम अपने नाना के यहाँ फिर अपनी ससुराल (ब्रज मे) होकर महाराज जयसिह के दर्बार मे चले गए थे । और यहाँ पर जीवन भर आपका यथेष्ट मान और वैभव रहा । कहते हैं कि एक समय महाराज जयसिह किसी नवोढ़ा मुग्धा रानी के प्रेम मे इतने बेसुध होगए कि उसे छोडकर बाहर निकलते ही न थे उस समय निम्नि-लिखित दोहा आपने उनके पास भिजवाया था .—

"नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकासु इहिंकाल ।
अली कली ही सौं बँध्यो आगें कौन हवाल ॥

सुनते हैं कि इस दोहा ने महाराज जयसिंह के ऊपर जादू का सा काम किया। दोहे को पढ़ते ही उन्हे अपनी भूल का तुरन्त ही ज्ञान हो गया और उसी समय आप बाहर निकल आए और तब से आपने भली प्रकार अपना राज्य काज सम्हाला। किसी किसी का कहना है कि उपरोक्त दोहा कविवर ने जयपुर पहुँचकर. जब कई दिन तक पडे रहने पर भी महाराज के दर्शन नहीं हुए और वहाँ की स्थितिका उन्हे हाल मालूम हुआ, तब किसी प्रकार महाराज तक भिजवाया था। अस्तु कुछ भी हो, किन्तु यह स्पष्ट है कि इसी दोहे के पश्चात् जयपुर मे आप का मान बढा।

उपरोक्त दोहे के उपलक्ष्य मे महाराज जयसिंह ने एक सौ मुहरें पुरुष्कार मे दी थीं। तथा और भी दोहे सुनाने के लिए कहा। उन्हो ने समय २ पर दोहे सुनाए और यथेष्ट इनाम पाया किसी किसी का कहना है कि सतसई के प्रत्येक दोहे पर आपको एक एक मुहर पुरुष्कार मे मिली थी। अस्तु तब से बराबर आप महाराज जयसिंह के साथ रहे यहाँ तक कि लडाइयो पर भी आप का महाराज के साथ जाना सिद्ध होता है।

स० १७११ वाली दक्षिण की लडाई मे इनके साथ रहने का प्रमाण —

"घर घर हिन्दुनि तुरकनी, देत असीस सराहि।
पतिन राखि चादर चुरी, तैं राखी जयसाहि" ॥

और काबुल की चढ़ाई के समय --

यो काढ़े दल बलखतें, तै जयसाह भुआल ।
बदन अघासुर के परे, ज्यो हरि गाय गुआल ॥

ये दोहे है ।

कविवर बिहारीदास श्रीकृष्ण भगवान के अतरग बिहार के उपासक थे । फिर भी उनका हृदय उदार भावो से परिपूर्ण था मत मतान्तरो के झगडो और दुराग्रह को ये अच्छा नहीं समझते थे। शुद्ध प्रेमोपासक थे । आपके निम्न-लिखित दोहे इसका प्रमाण हैं--

जपमाला छापा तिलक, सरौ न एकौ काम ।
मन कांचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम ॥
अपने अपने मत लगे, बाद मचावत सोर ।
ज्यो त्यो सबही सेइवौ, एकै नदकिशोर ॥

सस्कृत-साहित्य तो बिहारी का घर ही का था, किन्तु उनकी कविता से पता चलता है कि आप फारसी के भी अच्छे जानकार थे क्योंकि फारसी के शब्द (ताफ़ता, इजाफा किबुलनुमा पायंदाज गनी, सबील, अदब, दाग, आदि) आपने बडी खूबी से अपनी रचनाओ मे रक्खे हैं। प्रतीत होता है आपके मत से किसी भी भाषा का शब्द यदि वह सुन्दरता से रचना मे आसकता हो तो रखना अनुचित न था और यही कारण है कि आपकी सी शब्द योजना अन्य कवियो की रचनाओ मे देखने मे नही आती ।

बिहारी ने अपनी रचनाओ मे प्राय सभी अलंकारो और साहित्य के भेदो का वर्णन किया है । आप शृंगारी कवि थे, षट-

ऋतु का वर्णन जिस सुन्दरता से आपने किया है वह देखते और पढ़ते ही बनता है, परन्तु साथ ही आपको नीति, उपासना और शांति रस की रचनाएं भी कुछ कम चमत्कारिक नहीं हैं। वास्तव में आप अपने समय के बड़े ही सिद्धहस्त कवि थे।

अब अंत में आपके विषय की दो एक बातों का उल्लेख करदेना भी यहां आवश्यक जान पड़ता है।

अब तक आपको हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञों ने काकोर कुल के चौबे होना लिखा है, किन्तु यह बात ठीक नहीं है। केवल इस आधार पर कि कृष्ण कविने, जिन्हों ने कि आपकी सतसई पर टीका किया है, अपने को काकोरकुल का चौबे लिखा है अतः बिहारीदास भी काकोरकुल के चौबे होंगे, मान्य नहीं हो सकता।

हाँ यह हो सकता है कि बिहारीदास के नाना या ससुराल वाले चौबे हों और चूंकि आपने अपना बाल्यकाल अपने नाना के यहां तथा जवानी ससुराल में (व्रज में) बिताई थी। और आपकी प्रसिद्धि भी उसी ओर से हुई थी, अतः आपका ठीक ठीक इतिहास प्राप्त न होने से लोगों ने आपके नाना या ससुराल वाले महानुभावों के पटा (आस्पद) के अनुसार आपको भी चौबे मान लिया हो। क्योंकि सनाढ्यों में भी चौबे (आस्पद) होते हैं और मिश्र वंश के पुत्रों का चौबों के यहां व्याहा जाना सम्भव भी है। और व्रज और ग्वालियर की ओर इनके वंशजों के एक दो नहीं अब भी दस पांच सम्बन्ध हैं, अतः यह भी असम्भव

नहीं है कि उनका उस ओर सम्बन्ध न रहा हो। दूसरे उनका यह दोहा कि --

जनम ग्वालियर जानिए, खण्ड बुंदेले वाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बस ससुराल॥

ठीक ही है, क्योकि ग्राम फुटेरा जिसमे कि उनके वशज आज कल रहते हैं झांसी से १३ मील दक्षिण की ओर है और फुटेरा पिछोर कहलाता है। झासी और उसके आस पास के गांव ग्वालियर राज्य मे बहुत दिनों तक रहे, सम्भव है उस समय उनके इस गांव का सम्बन्ध ग्वालियर प्रान्त ही से हो और इस हेतु गाँव का नाम न लिखकर केवल प्रान्त का नाम लिख देना ही आपने पर्याप्त समझा हो।

अब रहा—

जनम लियो द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ॥

इस दोहे मे तो आपने स्पष्ट ही अपने इष्टदेव और पूज्य पिताजी को सम्बोधन किया है।

किसी किसी को यह आपत्ति है कि यदि बिहारीदासजी केशवदासजी के पुत्र होते, तो दो मे से कोई भी किसी न किसी के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ अवश्य लिख जाते, इसके लिए केशवदास जी से तो आशा करना सम्भव ही नहीं, क्योंकि उन्हो ने अपने से बड़ों का गुणगान तो अवश्य किया है, किन्तु अपने से छोटों का कहीं भी नहीं, यहां तक कि अपने अनुज कल्यान के विषय मे भी कोई विशेष बात उन्हों ने अपने ग्रंथों में नहीं लिखी। फिर

पुत्रों के विषय मे भला लिखने ही क्यों लगे। दूसरे केशव की मृत्यु के समय बिहारीदासजी की अवस्था अधिक से अधिक २०, २२ वर्ष की होगी और उस समय उनकी प्रतिभा का विकास ही पूर्णरूप से न हुआ होगा। अब रहे बिहारीदास, सो यह सतसई के पढ़नेवालो से छिपा नहीं है कि उन्हे झूठी खुशामद करना नहीं आता था उनका सिद्धान्त कविता से दूसरो का उपकार करने का था कीर्ति कमाना नही। "नेकी कर और कुए मे डाल" वाली मसल को उन्हो ने अत समय तक बड़ी खूबी से निबाहा उन्हे आत्मश्लाघा से चिढ़सी थी यहा तक कि अपने आश्रय-दाता महाराज जयसिंह तक के लिए कवल दो एक वास्तविक घटनाओ के विषयों के दोहो को छोडकर कही उनकी प्रशसा के दोहे नही लिखे और अपने लिए तो केवल एक ही दोहा "जनम लियो द्विजराजकुल" लिखकर सतोष करलिया। और यही एक दोहा उनके इतिहास के लिए बहुत कुछ हैं।

किन्हीं किन्ही को केशव और बिहारी के ग्रथों की भाषा की विभिन्नता पर आपत्ति है। किन्तु शंका करने के पूर्व यदि स्थिति पर भली प्रकार विचार करलिया जाय तो यह शका सहज ही मे समाधान हो जाय।

यह तो स्पष्ट ही है कि केशव का समस्त जीवन बुन्देलखण्ड ही में बीता और बिहारीदास का कुछ बुन्देलखण्ड मे और अधिकांश ब्रज में बीता। और उसीके अनुसार उनकी कविताए भी हुई फिर भी ठेठ बुन्देलखण्डी शब्दो (लखबी, ब्योरलि, जानबी, ब्यौसाल, थोरेई, घौसुवा, भोडर, चुपरी, सारोट, आदि) ने बिहारी का

साथ नहीं छोड़ा। और यदि विशुद्ध व्रजभाषा में भी उनकी कविता हुई होती तो भी केवल भाषा के आधार पर उनके पिता पुत्र के सम्बन्ध में शंका करना अनुचित ही सा है। देखिए बाबू गोपालचन्द्र (गिरधरदास) और उनके पुत्र भारतेन्दु बाबू-हरिश्चन्द्र एक ही स्थान में आजन्म रहे, परन्तु इन महानुभावों की भाषा में उससे कहीं अधिक अंतर है जितना कि केशव और बिहारी की भाषा में। अस्तु ये सब शंकाएं निर्मूल ही सी हैं और यह ठीक जान पड़ता है कि कविवर बिहारीदास महाकवि केशवदासजी ही के पुत्र थे। उनके वंशजों से यह भी पता चला है कि बिहारी की मृत्यु के पश्चात्, जो कि सं० १७२० वि० के लगभग अनुमान की जाती है, उनके पुत्रादि भी कुंडेरा लौट आए थे, किन्तु बिहारी के पश्चात् उनके वंशजों पर एक प्रकार का श्राप सा पड़ा और उनका वैसा वैभव न रहा तबसे उनके वंशज भोले भाले ग्रामवासी बनकर अपनी साधारण एक गाँव की जमींदारी ही पर शांति पूर्वक अपना २ जीवन निर्वाह करते चले आ रहे हैं और उन्हें इस सांसारिक उथल पुथल का कुछ भी पता नहीं है और यही कारण है कि वे हिन्दी-संसार के समक्ष उपरोक्त-कुल के वंशज होते हुए भी अबतक अपना परिचय रख सकने में समर्थ नहीं हो सके।

कविवर बिहारीदासजी के केवल एक मात्र ग्रंथ 'बिहारी-सतसई' का पता चलता है जिसमें कि ७१९ दोहे हैं। इस ग्रंथ के समाप्त होने के विषय में आप निम्न-लिखित दोहा

लिखते हैं --

९ १ ७ १

संवत् ग्रह शशि जलधि छिति, छठि तिथि वासर चंद ।
चैत मास, पख कृष्ण मे, पूरन आनँद कंद ॥

अर्थात् स० १७१९ वि० मे आपने इसे समा किया था इसके अतिरिक्त और किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता । किन्तु आपकी अमरता के हेतु यह अपूर्व ग्र थ बहुत कुछ है । इसकी जितनी भी प्रश सा की जाय थोड़ी है वास्तव मे आपने इस एक ही ग्रथ मे सब कुछ भरदिया है । कितनी भावुकता कितना लालित्य और कितना चमत्कार आप इसमे भर गये हैं उसका अनुमान केवल इसा म हो सकता है कि अब तक आपकी सतसई की लगभग २५, ३० गद्यात्मक और पद्यात्मक टीकाएं निकल चुकी हैं, किन्तु फिर भी हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्तियों को उनसे तृप्ति नहीं । हिन्दी-साहित्य मे 'रामचरित मानस' के बाद यह पहिली पुस्तक है जिसका इतना प्रचार और मान है ।

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े, तरे, जे बूडे सब अङ्ग ॥
मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तनु की झाँई परैं, श्याम हरित दुति होय ॥
अपने अँग के जानि कैं, जोबन-नृपति प्रबीन ।
स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो इजाफा कीन ॥
सनि-कज्जल चख-झख-लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु ।
क्यौ न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु ॥

कनकु कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ।
उहि खाएँ बौराइ, इहि पाएँ हीं बौराइ।
लोभ लगे हरि-रूप के, करी साँटि जुरि, जाइ॥
हौं इन वेची वीच हीं, लोइन वडी बलाइ॥
छिलक, चिकनई, चटक सौं, लफति सटक लौं आइ।
नारि सलौनी साँवरी, नागिनि लौं डसि जाइ॥
पट की ढिग कत ढाँपियति, सोभित सुभग सुवेष।
हद रदछद छवि देति यह, सद रद छद की रेख॥
फिरि फिरि बूझति, कहि कहा कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात॥
सोवत, जागत सुपन बस रस, रिस चैन कुचैन।
सुरति श्यामघन की, सुरति, बिसरैं हूँ बिसरैन॥
सोहत संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु॥
ललित श्याम लीला, ललन, बढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु-छाक्यौ मधुकरु पर्यौ, मनौ गुलाब-प्रसून॥
तिय-तिथि तरुन-किसोर-वय, पुन्यकाल-सम दोनु।
काहू पुन्यनु पाइयतु, बैस-संधि-संक्रोनु॥
जाति मरी बिछुरी घरी, जल-सफरी की रीति।
खिन खिन होति खरी खरी, अरी जरी यह प्रीति॥
मैं तपाय त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आएँ यहाँ, पुलकि पसीजै स्यामु॥

आड़े दे आले बसन, जाड़े हूँ की राति ।
साहसु ककै सनेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥
स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीरु ।
अँसुवनु करति तरौंस कौ, खिनकु खरौं हौ नीरु ॥
प्रान प्रिया हिय मे बसै, नखरेखा-ससि भाल ।
भलौ दिखायौ आइ यह, हरि-हर-रूप रसाल ॥
सीस मुकुट, कटि-काछनी कर-मुरली उर-माल ।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ, बिहारीलाल ॥
मुकुटा मटकनि, पीतपट, चटक, लटकती चाल ।
चल-चख-चितवनि चारि चितु लियौ बिहारीलाल ॥
सुनत-दोषु लगै सबनु, कहोत साँचे बैन ॥
कुटिल बक-भ्रुव-संग भए, कुटिल बंक गति बैन ।
चितवनि भोरे भाइ की, गोरै मुह मुसकानि ।
लागति लटकि अरी गरैं, चित खटकति नित आनि ॥
मार-सुमार करी डरी, मरी मरीहिं न मारि ।
सींचि गुलाब घरी घरी, अरी बरीहिं न बारि ॥
नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतो नीचौ ह्वै चलै, ते तौ उंचौ होइ ॥
भूषन-भारु संभारि है, क्यौ इहिं तन सुकुमार ।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा हीं कैं भार ॥
कहत सबै, बेंदी दियैं, आँकु दसगुनौ होतु ।
तिय-लिलार बेंदी दियैं, अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥

गोरी छिगुनी, नखु अरुनु छला स्यामु छबि देइ ।
लहत मुकति रति पलकु यह, नैन त्रिवेनी सेइ ॥

हुकुम पाइ जय साहि को, हरि-राधिका-प्रसाद ।
करी विहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥

किए सातसौ दाहरा, सुकवि बिहारीदास ।
बिनहिं अनुक्रम ए भए, महिमण्डल सुप्रकास ॥

श्री० पं० देवदत्तजी धौंसरिया

श्री०
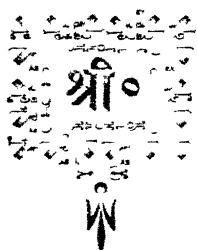
प० देवदत्त जी धौंसरिया का जन्म सं० १७३० वि० में इटावे में हुआ था। आपने अपने 'भाव-विलास' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है —

शुभ सत्रह सै छियालिस—चढ़त सोरही वर्ष।
कढी देव मुख देवता—'भाव विलास' सहर्ष॥

इससे विदित होता है कि आप का जन्म सं० १७३० वि० में हुआ था और आपने अपनी सोलहवीं साल अर्थात् स० १७४६ वि० में 'भाव-विलास' की रचना की थी। बहुत कुछ अनुसधान करने पर भी आप के वंशजो तथा आपके गोत्र आदि का पता नहीं लग सका है और न आप के प्रस्तुत ग्रन्थो ही से इस विषय मे कुछ विशेष जाना जाता है, किन्तु आपके इस कथन से, कि—

"धौंसरिया कविदेव को—नगर इटावे वास।"

यह स्पष्ट विदित होता है कि आप इटावे के रहने वाले और धौंसरिया आस्पद के सनाढ्य ब्राह्मण थे। आप बड़े ही प्रेमी और उत्कृष्ट कवि थे। आप ७२ ग्रंथो के रचयिता कहे जाते हैं। हिन्दी के पुराने कवियों मे इतनी अधिक सख्या में ग्रन्थ किसी ने नहीं रचे। अब तक आप के रचे हुए निम्न-लिखित ग्रन्थों का पता लग सका है —

(१) भाव-विलास (२) अष्टयाम (३) भवानी-विलास (४) सुन्दरी-सिंदूर (५) सुजान-विनोद (६) प्रेम-तरंग (७) राग-रत्नाकर (८) कुशल-विलास (९) देव-चरित्र (१०) प्रेम-चन्द्रिका (११) जाति-विलास (१२) रस-विलास (१३) काव्य-रसायन (१४) सुख-सागर-तरंग (१५) देव-माया-प्रपंच (नाटक) (१६) वृक्ष-विलास (१७) पावन-विलास (१८) ब्रह्म-दर्शन पचीसी (१९) तत्व-दर्शन पचीसी (२०) आत्म-दर्शन पचीसी (२१) जग-दर्शन पचीसी (२२) रसानन्द लहरी (२३) प्रेम-दीपिका (२४) सुमिल-विनोद (२५) राधिका-विलास (२६) नीति-शतक (२७) नखशिख।

आपके ग्रन्थ प्राय सब शृंगार रस पर है। आप की भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा है आपकी रचना मे, प्रसाद, माधुर्य, अर्थ व्यक्तता और ओज आदि गुणो का अच्छा चमत्कार देखने मे आता है।

आप की कविता मे कहीं कहीं बहुत गूढ भाव ऐसे मिलते हैं जो पढ़ते ही समझ मे न आने से कुछ रूखे से जान पड़ते हैं, परन्तु कुछ विचार करने से उनमे मनोहर रहस्य भरा हुआ मिलता है आप का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार था, ऐसा प्रतीत होता है। आपकी कविता से यह ज्ञात होता है कि आपने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी। क्योंकि आप की कविता मे प्रत्येक जाति की और प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियो का विलास-वर्णित है। जो प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं हो सकता।

आपने सं० १७४६ के लगभग औरंगजेब के बड़े पुत्र आजमशाह को 'भाव-विलास' और अष्टयाम' सुनाया था। आजमशाह ने इन ग्रन्थों की प्रशन्सा भी की थी। फिर ये क्रमशः भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूंद–इटावा निवासी) राजा उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल पिहानी के अकबरअलीखाँ आदि के आश्रय मे रहे। परन्तु कोई ी आश्रयदाता आप का यथोचित सन्मान नहीं कर सके। और यही कारण आप की कविता के जटिल होने का प्रतीत होता है।

आप बडे रसिक थे। श भा और शृंगार के बड़े चाहक थे। शृंगार-रस मे आप की प्रतिभा ऊँचे दरजे की थी। जीवन के अंत समय मे आपने कुछ कविताएँ वैराग्य पर भी लिखीं थीं। आप बडे ही सूक्ष्मदर्शी थे आप को गाने बजाने का भी बडा शौक था। आप का मरण काल सं० १८०२ के लगभग अनुमान किया जाता है। नमून के तौर पर आप के कुछ छंद यहाँ लिख जाते हैं।

—०•०—
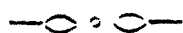
भेस भये विष भावने भूखन,
भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीचु की साध न सोंधे की स ध,
न दूधसधा दधि माखन छीछी॥

चंदन तों चितयो नहिं जात,
चुभै चित माँहिं चितोनि तिरीछा।
फूल ज्यो सूल सिला सम सेज,
बिछौननि बीच बिछीजनु बीछी॥
—:o:—

बालम-बिरह जिन जान्यो न जनम भरि,
बरि बरि उठै ज्यों २ बरसै बरफराति।
बीजनो डुरावता सभी ज त्यों सीत हूँ में,
सौति के सराप तनतायनि तरफरानि॥
देव कहै स्वासन ही अँसुवा सुखात मुख,
निकसेन बात ऐसी सिसकी सरफराति।
लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै
सूखे जल सफरीज्यों सेज पै फरफराति॥
—:o:—

जब ते कुवर कान्ह रावरी कला निधान
कान परी वाके कहुँ सुजस कहानी सी।
तबहाते देव देखी देवता सा हँसात सी,
रीझतिसी खीझति सी रूठति रिसानी सी॥
छोही सी छलो सी छीनलीनासीछकी छिन सी,
जकीसी टकीसी लगी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बँधी सी विष बूडति विमोहित सी,
बैठी बाल बकति विलोकति विकानी सी॥
—:o:—

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है,
चित और अरचा है चित चारी को।
छोड्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा
हरख न सोक ना अलोक नरनारी को॥
घाम सित मेह ना विचारै सुख देहहु को,
प्रीति ना सनेह रूह वन ना अँध्यारी को।
भूलेहु न भोग बड़ी विपति वियोग व्यथा,
जोग हू ते कठिन सँयोग पर नारी को॥

—:o.—

देव जू जौ चित चाहिये नाह,
तौ नेह निबाहिये देह हस्यो परै।
जौ समुझाइ सुझाइये राह,
अमारग मे पग धोखे धस्यो परै॥
नीके मे फीके है आंसू भरो,
कत ऊँचे उसांस गरो क्यो भस्यो परै।
रावरो रूप पियो अखियानि,
भस्यो सो भस्यो उबस्यो सो ढस्यो परै॥

—:o:—

सूरज मुखी चन्द्र मुखा को बिराजै मुख,
कदकला दन्त नासा किंशुक सुधारी सी।
मधुप से लोयन दल ऐसे ओठ श्रीफल,
से कुच कच बोलि तिमिरारी सी॥

मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण,

सुचीरगुल चांदनीसों चपककी डारीसी।

केलि के महल फूलि रही फुलवारी "देव"

ताही मे उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी॥

—:o·—

डार द्रुम पालन बिछोना नव पल्लव के,

सुमन झगूला सोहै तन छवि भारी दै।

पवन झुलावै केकी कोर बतरावै 'देव'

कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै॥

पूरित पराग सों उतार करै राई नौन,

कंज कली नाइका लतान सिर सारी दै।

मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि,

प्रातहिये लावत गुलाब चटकारी दै॥

—:o:—

नील पट तन पर घन से घुमाय राखौ,

दन्तन की चमक छटासी बिचरति हौं।

हीरन की किरन लगाइ राखौं जुगनू सी,

कोकिला पपीहा पिकबानी सो भरति हौं॥

कीच अंसुवान के मचाय कवि देव" कहै,

बालम बिदेश को पधारिबो हरति हौं।

इन्द्र कैसो धनु साज बेसर कसत आज,

रहु रे बसन्त तोहिं पावस करति हौं॥

—:o:—

आवन सुनो है मन भावन को भावती ने,

आँखिन अनँद आँसू ढरकि ढरकि उठैं।

"देव" दृग दौऊ दौरि जात द्वार देहरी लौं,

केहरी सी साँसैं खरी खरकि खरकि उठैं॥

टहलै करति टहलै न हाथ पाँय रंग,

महलै निहारि तनी त कि त कि उठैं।

सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आँगी,

औचक उचैहैं कुच फरकि फरकि उठैं॥

—:o:—

बरुनी बघम्बर में गूदरो पलक दोऊ

कोये राते बसन भगो हैं भेख रखियाँ।

बूड़ी जलही मे दिन जामिनि रहति भोहैं

धूम शिर छायो बिरहानल बिलखियां॥

ऑंसू ज्यों फटिक माल लाल डारे सेल्ही,

भई है अकेली तजि चेली संग सखियां।

दीजिये दरश देव लीजिये संजोगिन कै,

जोगिन ह्वै बैठी वा वियोगिन की ऑंखियां॥

—:o:—

सखी के सकोच गुरु सोच मृग लोचनि,

रिसानी पियसों जु उन नेक हँसि छुयो गात।

देव वै सुभाय मुसकाय उठि गये यहिं,

सिसिक सिसिक निस खोई रोय पायो प्रात॥

को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा,

हाय हाय कर पछताय न कछू सुहात।

बड़े बड़े नैनन सों आंसू भरि भरि ढरि,

गोरोगोरोमुख आजुओरो सो विलानोजात॥

—:o:—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,

कोई कहौ रंकिनी कुलंकिनी कुनारी हौं।

कैसे यह लोक नर लोक बर लोकनि मैं,

लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं॥

तन जाऊ मन जाऊ देव गुरु जन जाउ,

जीव किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।

वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी,

पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

—:o:—

चोट लगी इन नैनन की,

दिन हूँ इन खोरिन सों कढ़ती हौ।

देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट,

झरोखन के झँकती हौ॥

'देव' कहै तुम हौ कपटी तिरछी-

अँखियाँ करिके तकती हौ।

जानि परै न कछू मन की,

मिलि हौ कबहूँ कि हमैं ठगती हौ॥

—:o:—

जाके न काम न क्रोध विरोधि,

न लोभ छुवै नहिं लोभ को छाहौं।

मोह न जाहि रहै जग बाहिर मोल-

जवाहिर ता अति चाहौं॥

बानी पुनीत त्यों देव धुनी
रस आरद सारद के गुण गाहीं।
सील ससी सविना छविता,
कविताहि रचै कविताहि सरा हौं ॥

—:o:—

कंचन वेलि सी नौल बधू,
जमुना जल केलि सहेलनि आनी ।
रोमावली नवली कहि देव सु,
गोरे से गात नहात सुहानी ॥
कान्ह अचानक बोलि उठे,
उर बाल के व्याल बधू लपटानी ।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ,
दुहूँ कर झारत अंग अयानी ॥

—:o:—

बारे बडे उमड़े सब जैवे को,
तौन तुम्हें पठवो बलिहारी।
मेरे तो जीवन 'देव' यही धनु,
या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी ॥

जानै न रीति अथाइनि की,
नित गाइनि में बन भूमि निहारी॥
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछु,
जाने कहा मेरो कुञ्जबिहारी।

—:o:—

काहू की कोऊ कहावति हौं नहीं·
जाति न, पांति न, जाते खसौंगी।
मेरिये हांसी करौ किन लोगु,
हौ को, 'कवि देव जू' काहू हसौंगी॥
गोकुलचंद की चेरी चकोरी हौ,
मंद हँसी मृदु फन्द फसौंगी।
मेरी न बात बकौ बलि कोऊ,
हौं बौरियै ह्वै ब्रज-बीच बसौंगी॥

—:o:—
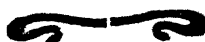
श्री० पं० विद्यापति जी मिश्र

श्री० पं० विद्यापतिजी मिश्र भिषग्वर का जन्म स० १७३० वि० के लगभग सहसवान * (सहस्रबाण) नगर जिला बदायूँ मे हुआ था आपके पिताजी का नाम श्री० प० वंशीधर जी मिश्र था। आप आयुर्वेद-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे अन्यान्य कठिन रोगो के अतिरिक्त आप नेत्र रोगो के अद्वितीय सिद्धहस्त प्रसिद्ध चिकित्सक थे। एव आयुर्वेद-विषय के आप उत्तम कवि थे। सुना गया है कि आप को कार्तिवीर्यार्जुन (सहस्रबाहु) की सिद्धि थी, जिस के द्वारा आपने अनेकों आश्चर्यप्रद कार्य किये थे। आप ने 'वैद्यरहस्य' और 'नयनानन्द' दो चिकित्सा ग्रन्थ निर्माण किये थे, परन्तु अब केवल आप का एक

---

* सहसवान (सहस्रबाण) परम प्रतापी राजा सहस्रबाहु का बसाया हुआ है ऐसी जनश्रुति ह। 'सहस्रश्रोत्र महात्म नामक पुस्तक जो अभी छपी नही है सहसवान निवासी प० मूलचन्द जी के पास ह उसमे सहसवान के इतिहास का पूर्ण विवरण ह। सहस्रबाहु के दुर्ग (किला) का खेडा अभी तक विद्यमान है जो कि नगर के अन्य मकानो से अधिक ऊँचा है। सहस्रश्रोत्रसरोवर के पास म जो एक छोटा सा खेडा है वह किसी समय मे कार्तिवीर्यार्जुन (सहस्रबाहु) का मंदिर था जिसकी बडी महिमा थी सहसवान के समीप ही मे लाग महर्षि जमदग्नि की तपोस्थान भी बताते हैं

वैद्य-रहस्य ग्रंथ ही दृष्टि-गोचर होता है। वैद्य-रहस्य के चिकित्सा-योग प्राय अनुभूत और उत्तम हैं। जैसा ग्रन्थ का नाम है वैसा ही यह गुण वाला भी है। कविता इस की बडी ही रम्य है। आप की सतति के विषय मे कवल इतना ही पता लगा है कि आप के पं० सच्चिदानन्द नामक प्रपौत्र वेदान्त विषय के उत्तम विद्वान एव बाल ब्रह्मचारी अद्वैतवादी सन्यासी थे। जो विक्रमी १९ वीं शताब्दी के अतिम काल मे अत्यत वृद्ध रूप मे विद्यमान थे। परन्तु अब आप के वंश मे कोई भी शेष नहीं है।

आप सुकविताओ के उदाहरण स्वरूप 'वैद्यरहस्य' से, जोकि श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस बम्बई से प्रकाशित होकर वैद्य-समाज मे यथेष्ट आदर और प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, यहा पाठकों के मनोरंजनार्थ चार श्लोक उद्धृत करते हैं —

मंगलाचरणम् (श्लोक)

यन्नाम स्मरणं समस्त दुरितः ध्वसा वहं पुण्यदं।
भक्ताना मभयं करं सुखकरं सर्वाथ सिद्धिप्रदं॥
तं न त्वार्जुन मीश्वरं गुरुकृपा वास्यैः सुसिद्धैर्वरै।
योगैर्वैद्यरहस्य मद्यतनुते विद्यापतिः कौतुकात्॥

अकृतज्ञों कोशाप

अस्मद्ग्रन्था द्वाहनान् सिद्धयोगान।
नन्यग्रन्थे स्था पयिष्यन्ति केचित्॥
अस्मात्स्थानाद्ये वदिष्यन्ति तेषां।
नाशं कुर्या दीश्वरोऽभीष्ट सिद्धेः॥

अंतिम श्लोक

दीर्घा दीर्घा सुबहवो ग्रन्थाः सन्ति तथापि मे ।
सम्प्रदायिक योगानां संग्रहार्थं मय श्रमः ॥

ग्रंथ निर्माणकाल और ग्रंथकार की प्रशस्ति

* चतु पञ्चाशद्भिर्मुनि विधुशते नाधिसहितै ।
गतेब्दे भूपार्का न्नभसि सितपक्षे फणि तिथौ ॥
इति श्रीमद्वंशीधर तनय विद्यापति कृतो ।
ऽभवन्पूर्णो ग्रंथ सकल भिषगानन्द जनकः ॥

* श्रावण शुक्ला ५ सं० १९५४ वि०

श्री० पं० मेवाराम जी मिश्र

श्रीयुत पं० मेवाराम जी मिश्र का जन्म अनुमानत १७५० और १८०० वि० के अन्तर्गत सोरों (वाराह क्षेत्र) जिला एटा में मिश्र उपाधिधारी सनाढ्य-वंश में हुआ था। आप व्याकरण, पिंगल, संस्कृत साहित्य तथा आयुर्वेद के धुरंधर विद्वान् होने के अतिरिक्त संस्कृत और भाषा के एक प्रतिभाशाली कवि थे। आप सरल प्रकृति, निर्लोभी दयालु, परोपकारी, भगवद्भक्त, षट्कर्म परायण विप्र थे। आपने कभी अपने जीवन में शूद्र यवनादिकों का अग्राह्य अन्न धनादि ग्रहण नहीं किया। कहते हैं कि एक बार लखनऊ के नव्वाब ने डाक्टरों और हकीमों के इलाज से हताश होकर अपने किसी आत्मीय के कठिन रोग की चिकित्सा के निमित्त आप को बुलवाया था और आप की प्रशंसनीय चिकित्सा से रोगी पूर्णतया निरोग हो गया। अत: मिश्र जी को विदाई में सम्मान पूर्वक बहुमूल्य दुशाले सुवर्णमुद्रा और मोती, चांदी के थाल में समर्पण किये गये। किन्तु आपने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

आप के एक पुत्र थे जिन का कि नाम पं० गणपति जी मिश्र था। आपके पौत्र पं० [illegible] जी मिश्र हुये, तथा आपके

प्रपौत्र प० चन्द्रसहाय और रणछोड मिश्र अब भी सोरो मे विद्यमान है।

मिश्र जी की काव्य रचना मे अधिक रुचि थी। आपके पांडित्य वैभव का साक्षी एक 'वैद्य-कौस्तुभ" नामक चित्र काव्य (आयुर्वेद विषयक संस्कृत ग्रन्थ) अब भी दो चार जगह विद्यमान है।

इस मे आपने ज्वराऽधिकार से लेकर वाजीकरणाधिकार पर्यन्त १६ सर्ग लिखे हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे "इति श्रीमन्मिश्र सेवाराम विरचिते वैद्य कौस्तुभाख्ये चित्रकाव्ये ज्वराऽधिकारो नाम प्रथम सर्ग' २ सर्ग ३ सर्ग' इत्यादि एव १६वें सर्ग में भी "इति श्री वाजीकरणाधिकारो नाम १६ सर्ग" लिखा है' समाप्ति सूचक कोई शब्द अथवा समाप्ति दिवस मास सम्वत आदि तथा अपना वंश परिचय आदि कुछ नहीं लिखा है। इस से ग्रन्थ अपूर्ण प्रतीत होता है जन श्रुति भी ऐसी ही है कि इस ग्रन्थ मे मिश्र जी और भी कतिपय आवश्यकीय विषयो का समावेश करनेवाले थे. इसी कारण ग्रंथ समाप्ति का लेख नही लिखा।

जान पड़ता है उपर्युक्त ग्रंथ मिश्र जी के जीवनान्त भाग मे लिखा गया है। अस्तु, जो कुछ भी हो किन्तु आप का इतना ही वर्तमान ग्रन्थ बड़े महत्व का है। नीरस आयुर्वेद विषय को अपनी ललित कविता द्वारा सरस बना देना मिश्र जी ही का काम था। इस ग्रंथ मे साधारणत निदान और विशेषतः

चिकित्सा दोनों ही वर्णित है। इस ग्रन्थ में आपने अपनी काव्य मर्मज्ञता का पूरा परिचय दिया है इस में अनेक प्रकार के वृत्त वाले अनुलोम प्रतिलोम, एकाक्षरी, द्वयक्षरी, त्र्यक्षरी, द्विचरणी त्रिचरणी, निरोष्ठ, सिंहावलोकन, यमकमय, क्रिया गुप्त अन्तर्लापिका, कर्मगुप्त, बहिर्लापिका, कमल, हार, कपाट, गोमूत्रिका, मुरज आदि चित्रबंध, एकार्थवाची, अर्थ द्वयवाची अर्थत्रयवाची, अनेकार्थ वाची आदि, १२०० श्लोक से अधिक लिखे है। उपर्युक्त ग्रंथ के कुछ पद्य निम्नलिखित है।

—:०:—

लक्ष्मीपति कलित हास विलास लील,
सीतास्प्रति प्रतिदिनं प्रमदोत्तमाङ्गीम्।
नत्वा करोमि चरकादि मुनीश्वराणां,
श्री वैद्य-कौस्तुभ मनेक विधान्विदित्वा।

— ० —

हस्ते वयोज्ञान कर किमस्ति,
रूप लकारस्य लिट किमाद्यम्।
कस्मै ददौ दैत्य पतिश्च भूमि,
माचक्ष्व कस्मै गुरवे नमोस्तु।

—:०:—

वैद्यो निदानांत निघण्टु वेत्ता,
क्रिया परोधीर धरो यशस्वी।
विचक्षणो विष्णु पदारविंद,
स्मृति दयावाननघः सुशील।

—:●:—

वैद्येक मन्क्रिर्वलवान चुधावान,
पथ्यस्यसोक्ता प्रकृति प्रगल्भः ।
जितेन्द्रियो साहस्मिको मनस्वी,
लक्ष्मी च दाता गदवानस साध्यः ॥

—:o:—

पित्तज्वर चिकित्सा

अयि पित्त नवं जयते शिशरः ।
स्महिमोजल जानि यथा शिशरः,
हरिणा व मधो विनिना शिशरः ॥
अयि पर्पट ज कृथित सजलः,
शृणु पित्त जमाशु हरेत्सजलः ।
वसुधा नल मत्ति यथा सजलः,
प्रमदे यदि वा सहिमः सजलः ॥

—:o:—

एकैव पित्त मपहातु ममन्द बुद्धे
श्रीमत्प्रकाश मदन द्रुम मंजरीत्वम् ।
व्यर्थं समर्थ मुनिभाषित मेतदस्ति,
नानौषधैः स्समुपयोग कृतं विधानम् ॥

—:o:—

*सेविता दृढ़ भक्तेन, प्रसन्नाम्बुज लोचने ।
भ्रम प्रदाय न पुंसां कामं हरति माधवी ॥

---

* इस श्लोक क श्री० प० दशरथ जी शास्त्री सांशो ने जो कि इस ग्रन्थ का अनुवाद कर रहे हैं दो अर्थ किये हैं--

अनुलोम प्रतिलोम

तव नाम सुधी नाना-भ्रू सुता ललितानव ।
भास्वतासि वयन्तात-न ते तेन भजामहे ॥ १ ॥
हेमजाभनते तेन, तन्वा यवसिता स्वभा ।
घन तालि लता सुभ्रू-नाना धी सुमनावत ॥ २ ॥

—:o:—

एकाक्षर पाद पद्य

भा भा भो भा भभो भू भू-शशी शांशा शिशुः शिशु. ।
नेना नां ननु ना नूनो-मामि म मा मिमा मिमैं ॥

—o.—

द्व्यक्षरी पद्य

किल कोक कलाकेलि-कलि के केकि काल के ।
लोकाल्लोलेलिकल्लोले-ला ला लुको किलाकले ॥

—.o—

त्र्यक्षरी पद्य

कमल कोमल मल्लिक मल्लिका-
लक ललाम कुलालि कुला कुले ।
मुकुलिको कलिका मिकमूलिके,
क्रमिक कामलि के मलमामलम् ॥

—:o:—

द्विचरणी पद्य

यदा वलमती वास्ति, स्यात्तदारोगलक्षणम् ।
यदा वलमती * वास्ति, स्यात्तदारोग लक्षणम् ॥

—:o:—

त्रिचरणी पद्य

उन्मत्त कोकिला लापे, सुगन्धि मलयानिले ।
उन्मत्त कोकिला लापे, वासंते वा समाचरः ॥

—:o:—

सिंहावलोकन पद्य

प्रभञ्जन पौष्करजंचले तृणं ।
तृणे न हं त्यत्र शृतं सुधाकले ॥
कलेवर श्रीजित लोल वैद्युति ।
द्युति प्रकाशे च कफ प्रभञ्जनम् ॥

—.o.—

निगंष्ट पद्य

दन्ति हस्त सघनाश्रित जंघं ।
क्षुद्रिका कटि तटे कल हासे ॥
छर्दि कास सहिते ह्यतिसारे ।
धान्य नागर जलं सघन श्री ॥

— o·—

अंतर्लापिका

आमन्त्र योरग महिश्च दधाति रुवा ।
विश्वौषधं कथय कं रचयंति मल्लाः ॥
एत द्विमृश्य वद वारिज चारु वक्रे ।
किं श्लेष्महारि रुचिकारि च नाग रंगम् ॥

—·o:—

कमल बंध हार बंध आदि

मानसं नय नदे नदी नवीन मान दे ।
न कं न केन किं नवा, नमे नमा नला न दनू ॥

—:o:—

सवैया

तीर चलैं तिरछे न कहीं,
पुनि जो पै चलैं समुहैं ही लागै ।
कंज प्रकाश करैं दिन मे
सफरी दुरगंध समूह न पागै ॥
'मिश्र जो' खंजन फाग तजैं,
मृग जंगल ऊजर मे अनुरागै ।
चन्द्रमुखी दृग की उपमा,
अवलोकत बीति गई निसि जागै ॥

श्री० पं० मुरलीधर चौबे

श्री०
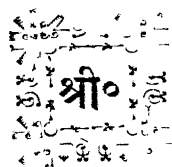
पं० मुरलीधरजी चौबे का जन्म सं० १८०० वि० के लगभग सोरों (बाराह क्षेत्र) तीर्थ जिला एटा में हुआ था। आप चतुर्वेदी (चौबे) उपाधिधारी सनाढ्य ब्राह्मण थे। 'मानों के चौबे' इस उपाधि में आपका वंश प्रसिद्ध था। आप हिन्दी भाषा के अच्छे कवि थे। सुना जाता है आपने कई काव्य पुस्तकों की रचना की थी। किन्तु अब आपकी कोई भी कृति पुस्तक रूप में दृष्टि-गोचर नहीं होती।

आपकी फुटकर रचनायें कुछ वृद्ध लोगों को अवश्य स्मरण है। जिनका कि नमूना निम्नलिखित है। आपकी संतति में अब कोई शेष नहीं है —

कवित्त।

कटकी गुलाब क्यों गुमान करै अपने मन,
हमैं कंज केतुकी सुबासन घनेरे है॥
आदर सों एक दिन आक पै बिसराम करैं,
आदर बिन कल्प-वृक्ष के न जात नेरे है॥
'मुरली' अलिन्दन के कुल की मरजाद यही,
गंधहीन पुष्पन पै करत नाहिं फेरे हैं।
तोसे मदवारे क्षुप की हू परवाह नहीं,
भव बिच भमरन को बाग बहुतेरे हैं॥

—:o:—

जातु हो कलार एक वारुनी को घडा लिये,
आयो उत गन्धी ले फुलेल-वर-वासना ।
ठोकर ठुमुक लागी दोऊ घट फूट गये,
आई कोई चातुर करत मुख भाषना ॥
मुरली कहै बुराई औ भलाई को विचार जेही,
आवत उत सुवास इत आवत सुवासना ।
कीजिये भलाई तासों जसको जग विकास होय
वासन विलाय जात रहि जात वासना ॥

—.o.—

रजक पै बैठी मयक मुखी,
सो तौ अङ्क रही पति के ढुकि कै ।
रति रम्भा सी जाकी खवासैं खडी,
लखैं देववधू व्रज में ढुकि कै ॥
सुख देखि के जे मन भावनी को,
सब सौते रही रिस में भुकि कै ।
मुरलीधर' लाल वितान तनो,
तहँ मोती के झॅप रहे झुकि कै ॥

—:o:—

जब महल अटा चढ़ी चन्द्रमुखी,
घनघोर घटा लियो भानु मुदै ।
सब पथिक पखेरुन जान परी,
'मुरलीधर जू भयो इन्दु उदै ॥
चकई चकवा लखि चकित भये,
उचरे हम एक भये क्यों न द्वै ।

हमको विधि ऐसो सदा ही रहो
चकई इमि चाहत चन्द उदै ॥

—:o:—

जय जय आदि वराह-क्षेत्र तप-भूमि सुहावन ।
बहति जहाँ सुरसरित दरिद दुरतादि बहावन ॥
लसत बिबिध सुर सदन भक्त-जन जीय जुरावन ।
सकल अमंगल हरन करन मंगल, मुनि भावन ॥
विप्र वृन्द जोगी जती, वरनत वेद पुराण जहँ ।
मुरलीधर अस पाइयत, दूजो जग में धाम कहँ ॥
उभै संधि में देव-आरती भक्त उतारत ।
घंटा दुंदुभि शंख झाँझ धुनि मोद पसारत ॥
भक्त भक्ति मदमत्त तहाँ प्रभु को जस गावत ।
मृदंग मंजु मजीर तार झनकार सुहावत ॥
जय गङ्गे वाराह की, पावन धुनि कानन परत ।
भोर हरि पदी तीर द्विज, 'मुरलीधर' संध्याकरत ॥

—:o:—

खोज करने से आपकी "द्वादश-श्रेणी जाति वृक्ष" नामक पुस्तक का १० वाँ पृष्ठ हमे प्राप्त हुआ है। यह पृष्ठ बिहारीलाल नामक ब्राह्मण का लिखा हुआ है। जान पड़ता है उपर्युक्त चौबे जी के ग्रन्थ को सग्रह हेतु बिहारीलालजी ने लिखा होगा और यह उसी का एक पृष्ठ है। यह पृष्ठ प० रेवाराम जी पुजारी ग्राम उड़ेसरी जिला एटा के पुस्तकालय मे मिला है, और मुझे श्री० पं० भद्रदत्तजी शर्मा कवि-कुमार भिषक् चूडामणि कासगंज द्वारा प्राप्त हुआ है। पाठको के मनोरंजनार्थ इसे हम ज्यों का त्यों ही नकल किये देते है —

द्वा० श्रे०

द्वादश श्रेणिन सनधर्म कर्म।
वैश्य धरहि ज्यहिं जानि मर्म॥
सोई द्वादश श्रेणि कहाय।
कुलकल कीरति जग महँ बढाय॥
द्वादश श्रेणी तरुवर ससाखि।
त्याह ममंय जो रहत साखि॥
ते जन नर हित सुखद नीर।
पुष्ट करत वर वरु कहँ सरीर॥
जे पढहिं वनिक जन मनहि लाय।
सोई वनिक पन धरिहैं रखाय॥
लेख लख्यो जस देव वानि।
तासु सार नर भारव सानि॥
लिख्यो कीर्तिधर मतवनिक हेत।
गो विप्र-भक्त गुन गन निकेत॥
निर्नहि लिखन कहं कीन्यो सकेत।
जाति वृच्छ आपन पढन हेत॥
चतुर वेद मुरलीधर सुनाम।
संतति सनाढ्य तप वेदधाम॥
हों रहों सुसकर खेत गाम।
प्रभु वराह पद पावन ललाम॥

इति श्री द्वादश श्रेणी-जाति वृक्ष सम्पूर्णम् ॥ लिखतम् बिहारीलाल ब्राह्मण सम्वतु १८९७

अङ्कांक वाणैस्तु मिते गताब्दे ।
श्रीधर्म सूतो नृपते सुराज्यात ॥
दत्तं पुरा श्रीपति संज्ञ केना
वैश्येन श्रीकश्यप गोत्र जन ॥
वेश्यो च्चित संस्कृति भाव पूर्णम्
श्रेणी पद द्वादश शब्द पूर्वम् ॥ १ ॥

श्री० पं० अंगदरामजी शास्त्री

श्री० पं० अंगदरामजी शास्त्री नैयायिक व्याकरण, कविराज का जन्म वि० सं० १८७० में भागीरथी गंगा के दक्षिण तीरवर्ती वाराह-क्षेत्र (सोरों तीर्थ) के अति समीप कस्बा बदरिया ज़िला एटा में हुआ था। आप वशिष्ठ गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपके पूज्य पिता का नाम श्री० पं० रामचन्द्रजी तथा माता का नाम रत्नकुमारी था। आपकी बदरिया ग्राम में कुछ ज़मींदारी भी थी। बाल्यावस्था ही से आप कुशाग्र बुद्धि विद्या व्यसनी एवं वाक्य पटु थे। २२ वर्ष की अवस्था तक आप व्याकरण में सारस्वत, सिद्धान्तचन्द्रिका, कोष, काव्य, पुराण और साथ ही आयुर्वेद और ज्योतिष भली प्रकार पढ़कर मनन कर चुके थे। उन्हीं दिनों श्रीसन्यासी स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती (प्रज्ञाचक्षु) दण्डी तीर्थ-यात्रा करते हुए सोरों पधारे थे। उनसे आपने सिद्धान्त कौमुदी, शेखर, मनोरमा, एवं वेदान्त ग्रंथों का अध्ययन किया। इन्हीं दिनों स्वामी जी रोग ग्रसित होगए। उस समय हमारे चरित्रनायक ने उनकी भलीप्रकार सेवा सुश्रूषा कर गुरु-भक्ति का पूर्ण परिचय दिया। आरोग्य हो जाने के पश्चात् उक्त स्वामीजी ने आपकी प्रखर बुद्धि और असाधारण स्मरण-शक्ति से प्रसन्न हो कहा कि अब मेरा विचार किसी विद्वान् से

अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ने का विचार है पढ़कर तुमको भी पढ़ाऊंगा, अत मथुरा को जाता हूँ, ऐसा कहकर सं० १८९३ वि० के प्रारम्भ मे आप मथुरा चले गये।

तदुपरान्त कोई पूर्वीय विद्वान् सोरो मे पधारे उनसे आपने न्याय, मीमांसा दर्शन, पिगल तथा एक दाक्षिणात्य सन्यासी से सस्वर वेद, निरुक्त तथा अष्टाध्यायी और कुछ महाभाष्य का अध्ययन किया और इस प्रकार आप पूर्ण पण्डित हो गए।

जिस प्रकार आप अद्वितीय विद्वान थे उसी प्रकार आप विशालकाय हृष्ट पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर दर्शनीय बलवान तथा सच्चे कर्मनिष्ठ भी थे। आपकी वाणी मेघगर्जन की समता करती थी आपके सन्मुख बडे बडे विद्वान बोलने तक का साहस नहीं कर सकते थे।

आपकी पाठशाला मे सौ सौ सवा सौ के लगभग विद्यार्थी नि शुल्क विद्याध्ययन करते थे भारतवर्ष के विविध प्रान्तों मे आपके शतश विद्वान शिष्य थे और अब भी विद्यमान हैं।

एक बार श्रीमहाराव राजा रामसिहजी जी० सी० एस० आई (काउन्सलर आफ दी इम्प्रेस बूंदी नरेश) गङ्गा-स्नानार्थ सोरो पधारे थे आपके साथ कई संस्कृत के अच्छे विद्वान और कवि भी थे और आप भी स्वयम् सस्कृत के अच्छे मर्मज्ञ थे अनायास आप हमारे चरित्रनायक से एक विषय पर शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए अतः महाराज बूदी की अध्यक्षता मे उन राज्य पण्डितों को आपने पूर्ण रूप से पराजित किया। बूँदी नरेश आपका महान् पाण्डित्य देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उसी समय

आपका १२५) नकद तथा एक बहु मूल्य दुशाला भेंट किया। और लगभग १००) वार्षिक दक्षिणा भी नियत करदी जो कि आपको यथा नियम जीवन भर मिलती रही।

स० १९२४ मे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आपको निम्नलिखित पत्र भेजा था—

पर्यटन विविधान् ग्रमान विजि · पण्डितान्बहून् ।
कर्णवासा ग्रामे विरक्तो विप्र वंशज. ॥ १ ॥
. . . सर्व वेदार्थ पारग·
आगतोऽहं दयानन्द, वैयाकरणकेशरी ॥ २ ॥
यदि विद्या विवादे त्वं शास्त्रिन् सामर्थ्य वानसि ।
आगत्य कुरु शास्त्रार्थं मयासाकंबुधाङ्गद ॥ ३ ॥
वेद नेत्राङ्क चन्द्रेब्दे माघ मासेऽसिते दले ।
चतुर्दश्यां गुरौ चेदम् पत्रन्तु लिखतम् मया ॥ ४ ॥

आपके नाम से निम्नलिखित जो एक श्लोक उक्त स्वामीजी के जीवन चरित्रो मे पाया जाता है वह तथा अन्य अपूर्ण श्लोक एक कागज पर आपके मकान पर रद्दी कागजो मे मिले है। एक ओर इस कागज पर स्वामी जी का पत्र है और दूसरी ओर जान पड़ता है कि स्वामीजी के पत्रोत्तर के अर्थ आपने कुछ श्लोक निर्माण किए थे। श्लोको के पद बना बना कर कहीं कहीं काटे हुए हैं कही उनमे अन्य शब्द योजना भी की है। प्रतीत होता है इन्हीं श्लोको को आपने शुद्ध करके तथा अपने विचारानुसार घटा बढ़ाकर उत्तर में स्वामीजी को लिखे होंगे। कागज अधिक समय का हो जाने के कारण कुछ गल भी गया है कुछ पदो के

अक्षर भी मिट गए हैं। हम उसकी ज्यों की त्यों प्रतिलिपि पाठको की जानकारी के लिए नीचे लिखते है।

शेषः पाताल के चास्ति स्वर्लोके च बृहस्पति ।
पृथिव्यामङ्गद साक्षात्, चतुर्थो नैव दृश्यते ॥ १ ॥

× × × ×

ये व्याक्रिया विपिन कुंज विहार शालि-
संदृष्ट वेद गुह केसरिणो मदन्ते
की ‥ ममगो प्रभावात्
तेपीह गोत्व सुपयान्ति कुतोऽसि मुण्डन ॥ १ ॥
गावो या जगतां प्रमोद कुशला यागादि धर्मावहा.
मन्वाद्यैश्च महर्षिभिः सुखपुरो या रक्षिता सूक्तिभिः
तासां विग्रह विद्रुहो नरपशून विक्रीडयन त्वादृशान्
सोहं केशर कर्तने पटुवरः संशास्मि वै सर्वदा ॥ २ ॥
आर्यम्मन्य मवश्यं त्वां सदार्य चरित द्रुहम्
शास्त्रार्थे तोषयिष्यामि, मदाह्वान् परायणम् ॥ ३ ॥
तासां सज्जनयन् कदर्थं विकृति सम्पाद्य नाशं गवाम्
त्वा दक्ष प्रणिनाद केसरिगणो नित्यं मया शिक्ष्यते
अहम्मन्यं दयानन्दं स्व प्रशंसा परायणम् ॥

इत्यादि ॥

सं० १९२५ के प्रारम्भ में स्वामी दयानन्दजी सरस्वती सोरो पधारे। हरि की पैरियो (गंगा) के किनारे अम्बागढ़ नामक स्थान पर आपका स्वामीजी से तीन दिन शास्त्रार्थ हुआ। दोनो ने युक्ति और प्रमाण पूर्वक अपने पक्ष का मण्डन और

दूसरे के पक्ष का खण्डन किया। दोनों ही संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान और एक ही गुरु के शिष्य थे।

शास्त्रार्थ के अंतिम दिवस सत्यता तथा निष्पक्षता से स्वामी जी ने कुछ सिद्धान्त आपके स्वीकार किए और आपने भी स्वामीजी के (किये वेद मंत्रार्थो को छोडकर) कुछ सद् विचारो को अपने हृदय मे स्थान दिया। अत अब विवाद केवल वेदमंत्रार्थों पर रह गया इसने उपस्थित विद्वानो की सम्मति से आपके तथा स्वामीजो के किए वेद मंत्रार्थों को पृथक् पृथक् लिखवाकर गोसाई बलदेवगिर ने दण्डी श्री बिरजानन्दजी के समीप निर्णयार्थ भेजे।

दण्डीजी ने दोनो के लिखे वेदमत्रार्थों को सुनकर तथा अन्यान्य विद्वानों की भी सम्मति लेकर यही निर्णय किया कि "अङ्गदराम का किया हुआ वेद मत्रों का अर्थ वैदिक कोष, व्याकरण एव प्रकरण के अनुसार ठीक है। दयानन्द को हठ करना ठीक नहीं है" यह निर्णय आपने अपने शिष्य श्री० प० युगलकिशोरजी शास्त्री के हाथो सोरो भेज दिया। गुरु भक्त स्वामी दयानन्दजी ने गुरु के भेजे निर्णयपत्र को पढ़कर आपके किए वेदमत्रार्थों ही को ठीक माना और अपने अर्थों का आग्रह त्याग दिया। विद्वान् लोग अति प्रसन्न हुए और दोनो मे पुन पूर्ववत् प्रेम होगया।

स्वामीजी के आग्रह से कुछ दिनो पश्चात् आपने सोरो मे महाभारत और मनुस्मृति की कथा कई दिन तक बाची इस मे

बहुत से सन्यासी ब्रह्मचारी एवं विद्वानों के अतिरिक्त स्वयं स्वामी दयानन्दजी श्रोता बनकर बैठते थे।

इन्हीं दिनों आपने स्वामीजी से पाणिनीय व्याकरण विचारा (यद्यपि आप इन ग्रंथों के अद्वितीय विद्वान थे किन्तु गुरु विरजानन्दजी की पढ़ाने की प्रणाली जानने के लिए आपने ऐसा करना उचित समझा.) और स्वामीजी को भी आपने पिंगल और न्याय ग्रंथ विचरवाये थे। स्वामीजी ने वर्षाऋतु पर्यन्त यहीं निवास किया था कभी कभी चार छै दिनको पर्यटन करने यत्र तत्र चले जाते थे किन्तु उन दिनों विशेष रूप से आप यहीं रहे थे। स्वामीजी के चले जाने पर उन से आपका पत्र व्यवहार सदैव होता रहता था।

सं० १९२५ वि० में आपके गुरुवर्य दण्डी विरजानन्दजी का देहावसान हुआ उनके शोक में आपने कुछ श्लोक लिखे थे आपने जिस कागज़ पर प्रथम इन श्लोकों की रचना की थी उसका एक टुकड़ा फटा हुआ प्राप्त हुआ है इसमें निम्न लिखित श्लोक फुटकर मिले हैं।

गुरुवर्या भवदंघ्रि पङ्कज मकरंदामृत पान लोलुपान्।
किमुछात्रगणान् विहायनो गतवन्तो विवुधालये वरे॥ १॥

कविता तति चक्रवालके निखिला कृत कला पण्डिताः।
शिरसा नमनम्प्रचक्रिरे, ननु दृष्ट्वा परमं हि कौशलम्॥ २॥

अथवा विषयेऽत्रभारवेश्चरितार्थं हि प्रतीयते वचः।
प्रकृतिः खलुसा महीय सां सहते नान्य समुन्नति यथा॥ ३॥

अतएव पुनः प्रतर्कये किमु दृष्ट्वा भवदीय कौशलम् ।
सुगति प्रसमीक्ष्य शाब्दिके भवतोऽध्येतु मना दिवस्पतिः ॥ ४ ॥
क्षिति मण्डल मण्डनायिताम्, यदि मां कृष्ण चरित्र चित्रताम् ।
यमुना जल शोभि घट्टनाम्, मथुरा काम दुधा महासिषुः॥ ५ ॥
व्रजानन्द स्वामी निगम पथगामी कवितमः ।
परिव्राडाचार्यः स च परमहंसो मुनिवर ॥

—.o—

आप संस्कृत भाषा के पूर्ण पण्डित तथा प्राकृतिक कवि थे। आपने "राष्ट्रविप्लव काव्य" नामक पुस्तक में सन १८५७ ई० के गदर का वर्णन किया था। तथा एक पुस्तक "बूंदी राज्यवंश वर्णन काव्य" नामक भी रची थी। उपरोक्त काव्यों के कुछ श्लोक आपके कनिष्ठ पुत्र प० रामरजजी शास्त्री तथा उनके शिष्य पं० गोपालदत्तजी कविसहचर को कण्ठस्थ थे। खेद है कि इन काव्यों का हम कुछ भी चिन्ह प्राप्त नहीं कर सके। आपने कई ग्रन्थों की टीका भी की थी उनमे से केवल एक काव्य और ग्रहलाघव ग्रंथ की टीका विद्यमान है। व्याकरण विषय मे आपने "कारिका मंजरी" नामक एक ग्रंथ लिखा था जिसमे समस्त सारस्वत व्याकरण का भाव विविध प्रकार के श्लोकों द्वारा वर्णन किया था यह ग्रंथ आपकी मृत्यु के पश्चात् पुस्तकालय की छत गिर जाने के कारण नष्ट हो गया। सम्भव है आपकी लिखी हुई अन्य पुस्तकों की भी यही दशा हुई हो। इस पुस्तक के आदि के कुछ श्लोक प्राप्त हो सके हैं जिस कागज पर प्रथम ही आपने

रचना करना प्रारम्भ की होगी यह वहीं कागज प्रतीत होता है इसमें से कविता के कुछ उदाहरण हम यथास्थान नीचे लिखेंगे।

कुछ देव-स्तोत्रादि भी आपने लिखे थे किन्तु खेद है ये सब बहुमूल्य कृतियाँ अनायास ही विलीन हो गईं। अनुसंधान करने पर जो कोई भी ग्रंथ आपके प्राप्त हो सके यदि प्रकाशित करा दिए जाय तो जनता का बड़ा उपकार हो

यद्यपि आप अब नहीं है किन्तु अब भी आपकी विद्वत्ता की प्रशंसा, कर्मण्यता और परोपकारादि सद्कार्य्यों की कीर्ति यत्र तत्र पण्डितों द्वारा सुनी जाती है

आपने ७५ वर्ष की आयु में यानी विक्रमी सं० १९४५ में इस असार संसार से नाता तोड़ परलोक यात्रा की थी।

आपके दो पुत्र थे ज्येष्ठ पं० रामरत्न जी वैद्य और कनिष्ठ पं० रामरज जी शास्त्री वैद्य थे पं० रामरज जी अष्टाध्यायी महाभाष्य काव्यादि तथा चरक सुश्रुतादि ग्रंथो एवं ज्योतिष के भी अच्छे विद्वान और कवि थे। इन दोनों भाइयों का भी स्वर्गवास हो गया है बड़े भाई के एक या दो पुत्र हैं। कनिष्ठ पुत्र के पं० कुंजबिहारीलाल जी वैद्य और लघु पं० व्रजबिहारीलालजी हैं ये भी होनहार और उन्नतशाली प्रतीत होते हैं —

आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

—'o.—

कारिका मंजरी के कुछ पद्य

श्री राघवं नमस्कृत्य, सूत्राणां चतुरोचिता।
कारिका मंजरीयं, यथा मति विधीयते॥

गते ऽव्यय किं दहनस्य बीज,
किमत्र वैजय शब्द आद्यम्।
वाच्य कथं मुन् किमुतच्चतुर्थी,
रूप चकस्मै गुरवै प्रणामः॥ २॥
वहिर्लापिका विरजानन्दाय गुरवे प्रणामः॥

अ इ उ ऋ लृ समान मज्ञ वर्णा
स्युरिम इति क्रमतो विवक्ति नःवान्।
नखलु भवति संहितेषु सूत्रे ष्विति,
नियमेन विवक्षित स्तु सन्धिः॥ ३॥
उदात्तादि भेदः मिथो ह्रस्व दीर्घ लुप्ताः
जाति साम्या सवर्णा अमोघाम्॥
ऋवर्णो लृवर्ण स्तथैक द्विमात्रो
मतो ह्रस्व दीर्घो त्रिमात्र प्लुतश्च॥ ४॥
ए ऐ ओ औ सॉहितान्य क्षराणि।
ज्ञेयानी नामान्य कारादयश्च॥
ए काराद्या कीर्तनीया स्वराश्च,
ज्ञात व्यास्ते नामिनो वर्ण वर्जाः॥ ५॥
इत्सञ्ज्ञितो योऽस्ति सलोप मेति
ऽदर्शन मस्ति लोपः॥

लुक् प्रत्यया दर्शनमस्ति नून
लोपस्तथा वर्ण विरोध इत्थम्॥ ६॥
वियुक्ताः स्वरैः संयोग संज्ञा,
तथा कुश्चुट्ट तु पुरेते चवर्गाः॥

विंदु पचम पचक ग्राहक च,
उकरान्परक्तत्र भाव्यो न वर्ण ॥ ७ ॥

अरे ओ इतिर् मे गुण नामिनश्च,
स्थितो वृद्धि संज्ञस्तथै औ ष्वन्यार ॥
स्वरांत्यादि वर्गाष्टि सज्ञान्य पूर्वोऽस्ति,
यश्चोपधा संज्ञको वैस्ववर्णाः ॥ ८ ॥

ह्रस्वो लघुर्यं भवर्तन्ति दीर्घो
ऽनुस्वार संयोग परो गुरुर्ना ॥
विसर्ग मिश्रो मुख नासिका व,
चनश्च वर्णो ऽस्त्यनु नासिकोति ॥ ९ ॥

स्व समान काल वर्ण ग्राहकस्त परं विनक्तय वसानम् ।
पद सञ्ज खलु संज्ञा संधिरिय विरचिता श्लोके ॥ १० ॥

स्वरे परे यत्व मियादि वर्ण
स्वरात्परो रेफ हकार वर्ज्यः ।
हसे ऽवसाने चहसे ऽस्तिवादि
भवे समानां च परे जवाम्यु ॥ १ ॥

सिद्धि यवला अपाढा,
धस्यैव यस्यैव सवेद्वयोर्न ॥
द्वित्वं द्वयो रूप चतुष्टयञ्च,
दध्यत्रये न्यादिषु वोध्यमेवम् ॥ २ ॥
यपोरहाभ्यां स्वर पूर्व काभ्यां-
द्विर्वेति गौर्य्यत्र च रूप मित्यम् ॥

रिफस्य गिद्धिर्जल तुम्बि कान्या-
येनोक्त मृद्धा गतिरस्य पोति ॥ ३ ॥

इत्यादि

—०—

श्रीमहाराजा बूंदी नरेश के भेजे हुए पत्रों में के कुछ पत्र

श्री बुन्दी नर देव शम्भव तुते-श्री रंगनाथ प्रिय।
श्री रंगेश्वर पादयं प्रतिदिनं वर्वधु भक्तिस्तव।
श्री गंगेति सुवन्तक तव सदा स्याञ्जे विलास क्रिया
दाशीरंगद शास्त्रिणा सुविहिता फल्यादिय सर्वदा ॥ १ ॥

—:०:—

विद्वत्ताभात चातुर्य्य स्वायत्तीकृत राज्य कम।
गंगा सहाय शर्माणं मानतो ऽस्मि विदाम्वरम् ॥ १ ॥

हरि सेवक सगम निष्ट हृदम्।
सकलर्त सुशास्त्र विचार परम् ॥
परकार्य कृतिन्द्रयया दधत।
हरिदास बुधं प्रणतोऽस्मि सदा ॥
स्वस्ति श्री शुभ गुण वृंद शोभिते श्री।
रंगेश स्तवन विधान लग्न चित्तम् ॥
श्री गंगा सण विशुद्ध मानसे श्री।
बुन्दीशे जनक सुता ऽसुनाथ सिहे ॥ ३ ॥

प्रकाशता मिय सन्या स्वार्श ग्गद शास्त्रिण॰।
श्रीरामसिंह स्तत्पुत्रा॰ भवंतु चचिरायुष ॥ ८ ॥

—०—

सोरो मे द्वारकाधीश जी के मंदिर की प्रतिष्ठा होने समय आपने दो निम्न लिखित श्लोक बनाए थे।

विश्वम्भर भार निवारणाय
ब्रह्मादिभि॰ प्रार्थित मादिने यं ।
यदोस्त दर्याय कुले उवतीर्ण ।
श्रीद्वारकाधीश मह नमामि ॥ १ ॥

समागतां प्राण विनाशनाय ।
हालाहलं पाययितुं स्तनस्थ ॥
य॰ पूतनां मारितवान् शिशुस्तम् ।
श्रीद्वारकाधीश मह नमामि ॥ २ ॥

—०—

एक बार आपके एक अल्प वयस्क विद्यार्थी से किसी पण्डित ने पूछा था कि "तू कहां पढता है और क्या पढता है" तब उस बालक ने उसी समय निम्न लिखित तीन श्लोको द्वारा उत्तर दिया था ।

कुमति गाढ़ तमोहर तीह या,
प्रथमन पठिता लघु दृष्टितः ।
वरद राज कृता लघु कौमुदी,
सुबहु दोषगकं परि पठ्यते ॥ १ ॥
वदरिया सुविधान सुपत्तने,
प्रथित सूकर तीर्थ समीप गे ।
वसति बन्धु जनैः कुशलै निजैः
नियत मङ्गदराम सुपण्डित ॥ २ ॥
तत्पाठशाला विदिता प्रशस्ता,
विद्यार्थिना मोद करी मनस्था ।
विद्यार्थिन स्तत्र पठन्ति नित्यम्,
तत्रैव शो पण्डित पा पठीमि ॥ ३ ॥

—.०.—

श्री० पं० हेतरामजी पाराशर
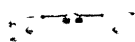
श्री० प० हेतराम जी पाराशर सी० आई० ई० का जन्म स० १८८५ वि० मे बरेली मे हुआ था। आपके पिता जी का शुभनाम श्री० ५० गुलाबसिंह जी था। आप भारद्वाज गोत्रीय पाराशर हैं।

बाल्यकाल मे आपने फारसी की शिक्षा पाई थी किन्तु अपने पिता जी के देहान्त के पश्चात् आपने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया इस समय आपकी अवस्था १८ वर्ष की हो चुकी थी।

आपने बरेली कालेज मे अंग्रेज़ी के फर्स्ट क्लास की, जो कि आजकल क बी० ए० के बराबर है, परीक्षा पास की।

परीक्षोत्तीर्ण होने के पश्चात आपने सन् १८५६ ई० मे एजूकेशनल डिपार्टमेंट (शिक्षा-विभाग) मे नौकरी करली सन् १८५६ ई० के देशव्यापी गदर के समय आप शिक्षा-विभाग के डिपुटी इसपेक्टर थे। गदर प्रारम्भ होने पर जब वहाँ के जज साहब मारे गए और सब अंग्रेज वहां से चले गए तो आप भी इलाहाबाद चले आए और वहां से जेनरल हैवलौक की फौज के साथ आप कानपुर आए और सन् १८५८ ई० मे वहां के कलेक्टर शैरर साहिब के साथ तहसीलदारी का काम करते रहे।

गदर की खैरख्वाही मे कुछ जमींदारी भी आपको बरेली मे पुरुष्कार मे मिल थी। सन् १८७० ई० मे आप डिपुटी कलेक्टर

होकर फतेहपुर गए वहां से इटावा गए और बंदोबस्त का काम करने लगे। इन्हीं दिनों रियासत रीवा को एक नायब दीवान के पद के लिए एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई गवर्नमेंट ने आपको हर प्रकार योग्य समझ कर सन् १८७४ ई० में उस पद पर नियुक्त करके भेजा।

कुछ वर्ष उपरान्त रीवा के कविता प्रेमी महाराजा साहिब श्री रघुराजसिंह जू देव का देहान्त हो गया और युवराज महाराज सर श्री० वकेटरमन सिंह जू देव की छोटी अवस्था होने के कारण वहा का प्रबन्ध गवर्नमेंट ने रीजेन्सी द्वारा किया और इसी वर्ष आप इस रियासत के दीवान नियुक्त किए गए।

सन् १८८८ मे लंडन एकजिबिशन मे रियासत रीवा से कुछ चीजें भेजने के उपलक्ष्य मे आप को एक चित्र और एक पदक पुरुष्कार मे मिला था। इसी वर्ष सन् १८८८ के लगभग आपको सी० आई० ई० का भी पद मिला।

दीवानी का कार्य्य आप सन् १९०१ तक करते रहे और जिस योग्यता से आपने अपना यह कार्य्य भार निबाहा उसकी प्रशंसा अब तक रीवाँ राज्य की प्रजा से सुनने मे आती है।

इसके पश्चात् आपने पेन्शन लेली और अपने घर बरेली रहने लगे। यहा पर आप जीवन पर्यन्त फर्स्ट क्लास स्पेसल मजिस्ट्रेट रहे। आपका देहावसान् सन् १९११ मे ८३ वर्ष की अवस्था मे बरेली में हुआ था।

पाराशर जी बड़े ही दयालु और परिश्रमी व्यक्ति थे सार्व जनिक कामों मे आप बड़ी ही तत्परता से भाग लिया करते थे सन् १८९५ मे जब गङ्गाजी मे पानी कम आने लगा था और प्रान्त में खलबली सी मची हुई थी तब सर चार्ल्स क्रास्वेथलाट साहब ने इस प्रान्त के मुख्य हिन्दुओं की एक कमेटी पाँच सदस्यों की बनाई थी उन पांच के मुख्य सदस्यो मे एक आप थे। इस कमेटी का कार्य्य बड़ा ही सराहनीय रहा था और नहर द्वारा गङ्गा जी में पानी आने का प्रबन्ध होजाने से प्रान्त का वह असतोष दूर करने का बहुत कुछ श्रेय आपको है।

सन १९०३ ई० में देहली में लार्ड कर्जन का विख्यात दरबार हुआ था उस "वर्ष श्रीसनाढ्य महामण्डल आगरा" का अधिवेशन भी वहीं कियागया था और आप उसके सभापति हुए थे। जिस वर्ष बरेली मे उपरोक्त महामण्डल का अधिवेशन हुआ था तो आप उसकी स्वागत कारिणी-समिति के सभापति थे।

बरेली कालेज के आप कई वर्ष तक उप सभापति रहे, सभापति केवल कमिश्नर हुआ करते थे। कालेज को पराशरज के उद्योग से धनादि की भी अच्छी सहायता मिलती रहती थी।

बरेली अनाथालय को भी आपने समय समय पर और खूब दान दिया।

क्रास्वेथ कन्या पाठशाला इलाहाबाद और मेडीकल कालेज लखनऊ को आपने तथा विश्व-विद्यालय काशी को आपकी धर्मपत्नी ने बहुत द्रव्यदान दिया है।

आप बरेली के बड़े ही धनी और लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति थे लार्ड कर्ज़न के देहलीवाले विख्यात दरबार मे आप भी निमन्त्रित किए गए थे और गवर्नमेंट ने आपकी सेवाओ से प्रसन्न हो इसी दर्बार मे आपको एक पदक भी दिया था।

आपका व्यवहार बडा ही सरल और सादा था इतने बडे पद पर होते हुए भी आपको अभिमान छू नही गया था। जाति-हित के कार्य्यों मे आप सदा तत्पर रहा करते थे।

आपके वश मे आपकी वृद्धा पत्नी, चार पुत्र और एकपुत्री तथा अनेकपौत्र पौत्रिया वर्तमान है।

आपके ज्येष्ठ पुत्र राय बहादुर प० काशीनाथजी एम० ए० एम० बी० ई० डिपुटी कलेक्टर अयोध्या स्टेट के मैनेजर हैं। द्वितीय पुत्र प० माधौप्रसादजी आई० एम० एस० रुड़की मे मिलिटरी सरजन हैं तृतीय पुत्र पं० द्वारकाप्रसादजी बी० एस० सी० चेयरमेन म्यूनिसपिल बोर्ड बरेली है चतुर्थ पुत्र प०-कृष्णप्रसादजी आई० सी० एस० कलेक्टर है।

आपकी पुत्री का पाणि-ग्रहण श्री०प०कन्हैयालालजी मिश्र बी० ए० मन्त्री श्री महाराजा बहादुर सर भगवती प्रसादसिह जूदेव बलरामपुर नरेश के ज्येष्ठ पुत्र प० रामगोपालजी मिश्र बी० एस० सी०, एम० आर० ए० एस० आदि डिपुटी कलेक्टर से हुआ है।

आप कविता अच्छी करते थे यद्यपि कार्य्याधिकता के कारण आप अपना अधिक समय इस ओर नहीं दे सकते थे

फिर भी आपने समय समय पर जो कविताएँ लिखी हैं इनमें आपके विचारों की उच्चता का भली प्रकार पता चलता है

आप अपने ही मनोविनोद के लिए कविताएँ किया करते थे और यही कारण है कि जन साधारण में आपकी कविताओं का प्रचार नहीं है। सुना है कि आपकी कुछ कविताओं का संग्रह आपके सुयोग्य पुत्रों के पास है। क्या ही अच्छा हो कि वह संग्रह प्रकाशित कर दिया जाय !

आपकी सुकविताओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं —

—:o:—

राम मेरी काहे न खबर करी।
तारी मारा और अहिल्या-शिवरी अरु कुबरी॥
जब आई है मेरी बेरा-तब कस देर करी।
माया मोह सब घेर रहे हैं-हरि की सुधि बिसरी॥
जब आई चलने की बेरा-तब है बिपति परी।
तुमसे मेरी लगन लगी है-आवै कब सुघरी॥
'हेतराम' सुमरै जब रघुबर-सुधरै सब बिगरी।
बिना भजन श्री सिया रघुबर के-नाहक देह धरी॥

—:o:—

अर मन काहे न राम कहै।
दुनियाँ का अन्धा भवसागर-गहरी धार बहै॥
राम नाम की नाव बनाले-तब ही तू निबहै।
भाई बन्धु अरु कुटुम कबीला-कोई न संग गहै॥
धन दौलत अरु माल खज़ाना-पीछे पड़ा रहै।
'हेतराम' जाये जग सरबस-राम का नाम रहै॥

—:o:—

चलो रे पंछी भजो राम का नाम।
राम का नाम मुक्ति का दाता सिद्ध करता है काम ॥
फँसा है पक्षी भँवर जाल में लोभ क्रोध अरु काम।
मोह बीच में लिप्त हुआ है नहिं जानै परनाम ॥
भांति भाँति के पंछी आये रंग बिरंगे चाम।
सब का है इक रैन बसेरा-चलै फिर अपने धाम ॥
धाम की सुधि, है जिससे बिसरी-है वह नमक हराम।
'हेतराम' सुमिरौ रघुवर को-भूलो मत हरनाम ॥

—:o:—

करौ मनहरि-भक्तन को संग।
जिनके संग से पाप कटत हैं-दुर्गुन होते भंग।
आशा तृष्णा घेर रही ज्यों-दीपक परत पतंग ॥
छोड़ो दुनियाँ मोह लोभ का कीजे अब न कुसंग।
'हेतराम' शरणागत आये-जो यह उठत उमंग ॥
'करौ मनहरि-भक्तन को संग'।

—:o:—

हम हरि तरन तारन सुने।
हम तरन, तुम तारन-दोऊ संगी बने ॥
रावणादिक बाल तारे-ग्राह से अनगिने।
मीरा अरु प्रहलाद तारे-और केतिक जने ॥
टेर मेरो सुनहु रघुवर-मोह माया हने।
'हेतरामहि' तारो जो तुम-बात तब ही बने ॥

—:o:—

श्री० पं०सुधाधर देव शास्त्री कविरत्न
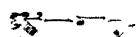
श्री० पं० सुधाधर देव शास्त्री कविरत्न का जन्म वि० सं० १८९९, भाद्रपद कृष्ण द्वितीया चन्द्रवार शतभिषा नक्षत्र में माडव्य नगर (मेडू) में हुआ था। आप व्याकरण, साहित्य तथा न्याय के अद्वितीय पण्डित थे। ज्योतिष विद्या में आपका असाधारण चमत्कार था धर्मशास्त्र की व्यवस्था आप बड़ी ही उत्तमता से लगाते थे, संस्कृत के साथ ही साथ आप हिन्दी भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे। सरल साधु भाषा में हिन्दी लिखना आप का उद्देश्य था। आप संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में अच्छी कविता करते थे।

दिल्ली दरबार के समय दिल्ली पधार कर आपने एक संस्कृत अष्टक महाराजा एडवर्ड को भेंट किया था, जिसके उपलक्ष्य में आप कविरत्न की उपाधि से विभूषित किए गए थे।

आप बड़े ही साधारण प्रकृति के व्यक्ति थे। आप अपने नाम के साथ कभी शास्त्री पद तक नहीं लिखते थे। आप के जीवन का मुख्य लक्ष्य परोपकार था, आपने धार्मिक व्यवस्था के साथ अनेक परोपकारी कार्य्य किए थे। आपने धर्म्मामृत वर्षिणी नामक सभा की स्थापना की थी। आपने 'कामेश्वर पाठशाला' नामक पाठशाला को भी स्थापित किया था और निस्पृह होकर ३०, ३५ वर्ष तक सहस्रों विद्यार्थियों को इसके द्वारा आपने विद्यादान

दिया, यहाँ तक कि धनहीन विद्यार्थियो के भोजनादि का प्रबन्ध आप स्वयम् अपने कोष से तथा हाथरस वासी सेठ साहूकारो से सदैव कराते रहे। इस पाठशाला के छात्र काशीस्थ आचार्य्य तथा मध्यमादि परीक्षा तथा कलकत्ता की उत्तमादि परीक्षाओ में प्रवेश होकर उत्तीर्ण होते रहे। इस पाठशाला को चिरस्थायी रहने के लिए आपने अपने जीवन काल ही मे १०) मासिक आय की जमीन पाठशाला के नाम सरकारी नियम के अनुसार रजिस्टरी करा दो थो। यह पाठशाला अब भी आपके यश और नाम की सुधि दिला रही है।

आपके कोई पुत्र न था। अत आपने अपने एश्वर्य को श्री ठाकुर जी के अर्पण कर दिया था, यह मदिर अब भी मेडू मे वर्तमान है। आपन अपने जीवन काल ही मे प्रत्यक्ष कितने ही गोदान और एक पचाशत ११) रु० के गोदान और अन्न, सुवर्ण, वस्त्र पुस्तकादि तथा त्रयोदशपदी का दान विधिवत् ब्राह्मणो को किया था। कितनी ही बार आपने श्रीमद्भागवत का पाठ और सप्ताह कराए।

आपको भागवत से बहुत प्रेम था। आप इसके अच्छे वक्ता भी थे। शरीरान्त होने के दो वर्ष पहिले ही से आपने असार संसार से विरक्त होकर सन्यास धारण कर लिया था और अन्त समय तक परमात्मा का ध्यान करते हुए श्रीमद्भागवत का पाठ श्रवण करते करते आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी बुधवार सं० १९७३ वि० को शरीर त्यागा था।

आपने निम्न लिखित ग्रथो की रचना की है —

(१) विधवा-विवाह भ्रमनिवारक

(२) अधिक मास निर्णय

(३) साहित्य चन्द्रावलि

आपकी सुकविताओ के उदाहरण निम्न लिखित हैं —

श्लोक

सभा स्थिता श्रेष्ठ गुणै समेतान्
द्विजान् सनाढ्यान् प्रणमामि नित्यम् ।
यदीय वाक्याऽमृत पूत देहाः,
भुञ्जन्तु भागान्नुभय त्रलोका. ॥

(२)

द्विवेदि· त्रिवेदि· चतुर्वेद वक्ता,
मुपाध्यायकान पाठकान दीक्षिताञ्च ।
तपो ब्रह्मचर्य्यादि भिर्नित्य युक्तान,
नमाम· सनाढ्यान् सदा भूमि देवान् ॥

(४)

इदानी ननानेक विद्या प्रयुक्तां,
धनैर्पूरितान्धर्म्म बुद्धीनुदारान् ।
निरालस्य कान कार्य्यं कर्त्तुं समर्थ्यान्
नमामो नमामो नमामो सनाढ्यान् ॥

(४)

कुर्वन्तु सर्वे मिलिता भवन्तो,
पाठालये यत्र पठन्तु छात्रा ।
विद्या यशो धर्म विवर्द्ध यस्युः,
नाशः कुरीतेर्भवता सुरीतिः ॥

सृष्ट्यादौ विधिना गृहीत तपसा सृष्ट्या प्रजा हेतवे,
वेदाभ्यास रताः पुत्रारनिपुणा सर्वे सनाढया द्विजाः ।
तेभ्यो ब्राह्मण जाजयस्समु भवन्देशै प्रसिद्धि गताः,
विद्या धर्म शील युतः समाधि सहितं तस्मात्सनाढयोत्तमाः ॥

—०—

ॐ ये काश्यादि निवासिनो द्विजवरा तीर्थे प्रयागे स्थिता,
सर्वान्स्तान्विदुषो विचार निपुणान् वध्वाञ्जलि प्रार्थये ।
श्रीमन्त प्रवदन्तु स्वीय कृपया शास्त्रोक्ति तो निश्चितम्,
सद्वा सद्विधवा विवाह करण तस्या नियोगस्तथा ॥

ॐ जिस समय आपने विधवा-विवाह भ्रम-निवारक पुस्तक लिखी थी उसी समय कुम्भ के अवसर पर श्री सनातन धर्म महासभा के अधिवेशन में आपको प्रयाग जाना पड़ा था । उपरोक्त श्लोक द्वारा आपने सभा में पण्डितों से प्रश्न किया था । इससे चारो ओर के पण्डितो मे बड़ी सनासनी सी फैल गई और अधिक बाद विवाद के पश्चात् आपकी "विधवा-विवाह भ्रम निवारक" पुस्तक इस विषय पर अति उपयोगी समझी गई और वह प्रकाशित भी कर दी गई ।

—०—

श्री० पं० गङ्गाधरजी व्यास

श्री० प० गङ्गाधरजी व्यास का जन्म माघ बदी ९ स० १८२९ वि० में छतरपुर मे हुआ था। आपके पिताजी का शुभनाम श्री० प० रामलाल जी व्यास था। आप कोटरा के व्यास कहे जाते हैं आपके पितामह महोबा से छतरपुर आकर बसे थे। आप प्राकृतिक कवि थे और कविता भी बडी शीघ्रता से किया करते थे, महाराजा छतरपुर आपका अधिक सम्मान करते थे, राज्य की ओर से आपको मासिक वेतन तथा सवारी आदि का यथेष्ट प्रबन्ध था। आपकी विद्वत्ता पर मोहित हो कर पन्ना बिजावर चरखारी आदि समीपवर्त्ती राज्योंके नरेशों ने भी समय समय पर आपको बुलाकर आपका यथेष्ट सन्मान किया था। आपका बैकुण्ठवास श्रावण सुदी १४ सं० १९७२ मे हुआ था। आपके सुपुत्र श्री० प० मगनलालजी तथा चगनलालजी व्यास अब भी छतरपुर मे हैं और महाराजा छतरपुर उन्हे भी भली प्रकार मानते हैं।

आपने नीतिमजरी, विश्वनाथ पताका, व्यग पचासा, गो-माहात्म्य, भरथरी नामक ग्रथो की रचना की थी। सत्योपाख्यान नामक सस्कृत ग्रंथ का भी आपने भाषा मे छदोबद्ध अनुवाद करना प्रारम्भ किया था जोकि प्राय समाप्त हो चुका था केवल

अंतिम भागका अनुवाद शेष रह गया था कि आप काल कवलित हो गये। आपकी ये सब पुस्तकें अबतक अप्रकाशित ही हैं।

आपकी कविता के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। आप की कविता व्रजभाषा और बुन्देलखण्डी मिश्रित है किन्तु है बड़ी सरस और भावपूर्ण आपके बुन्देलखण्डी शब्दों के समुचित प्रयोग पर कहीं २ तो मुग्ध होकर चकित हो जाना पड़ता है। आप की बहुत सी कविताओं को स्थानाभाव के कारण हम यहा पर नहीं दे सके है। फिर भी जो कुछ भी प्रस्तुत है पाठक उन्हे ध्यान पूर्वक पढने की कृपा करे—

एक बार बिजावर नरेश महाराजा भानुप्रतापसिंह जू देव ने आपको अपने दरबार मे बुलाकर यह समस्या दी थी,

"खोल सन्दूक मानौ मारी बदूक है"

व्यासजी ने तत्काल समस्या की पूर्ति निम्नलिखित ढग से करदी। तब तो महाराजा साहब बहुत प्रसन्न हुए और २५) नकद, सिरोपाया (शिर से पैर तक के पहनने के कपड़े) और एक अनुपम छड़ी भेट की—

पलकन की झपनी व काजर की दारू दै,
चितवन बंक माहि खाँदी खंदूक है।
गोलक की गोली उर वरनी कौ राम झला,
बिधै लाल डोरन मै फाँदी फंदूक है।
'गंगाधर' कहै नैन कीन्हें भट मनमथ के,
जागी रत जुद्धमांहि हारी रदूक है।

घूंघट उघार प्यारी नेकहु निहारैं तौ,
"खोल संदूक मानौ मारी बदूक है।

— ० —

इसी प्रकार चरखारी नरेश महाराजा मलखानसिंह जू देव के दरबार मे गोवर्द्धन मेला के समय पर एक कवित्त कहने पर आपको १५) नकद तथा बहुमूल्य बस्त्रालकार भेंट मे मिले थे। वह कवित्त इस प्रकार है।—

आए एक पच्छ में रहे हौ ब्रजराज कहां,
तेरो मुख कज मंजु अमित निहारो है।
ढील सिर पेच पाग पेंच खैंच बाँधो नहीं,
नैनन मे कछू कछू आलस निहारो है।
गगाधर' श्यामा सौ श्याम हँस बोले बैन,
गयौ रहयौ चक्रपुरी * धाम ह्वां हमारो है।
पूरी भक्ति देख देख भूप मलखानजू की,
इत गिरधारि उत फेर गिरधारो है।

— ० —

महाराजा छतरपुर की दी हुई 'राधेश्याम" समस्या की पूर्ति आपने इस प्रकार की थी।

कठिन कराल या कपूत कलिकाल विषय,
मानै अर्ज ये ही नर देही ना देवै राम।

* चरखारी

"गंगाधर" कहै जो पै देवै नर देही तो पै,
एतो सामान देय देह संग आठों जाम।
दीवे को दान और छीवे को विप्र चरण,
रीवे के काज एक वृंदावन सरस धाम।
कीवे को साधुसंग पीवे को जमुना जल,
लीवे को 'राधेश्याम' 'राधेश्याम' 'राधेश्याम'।

महाराजा छतरपुर की दुनाली बदूक का वर्णन करते आप कहते हैं—

करि मद पान सान धारन सँहारन को,
मारत निसान चोट परत न खाली है।
जाकी सुनि आज मृगराज मुख मोरि जात,
छोड़ जात कानन विष ज्वाल सरिस जागी है।
'गंगाधर' कहै चलै मनके इसारे पर,
बाजहू के ढारे पर करत उतालि है।
काली सी किलकत बिहाली करै शत्रुन को,
ऐसी महाराज विश्वनाथ की दुनाली है।

उपरोक्त महाराजा साहब को आशीर्वाद देते हुए एक बार आपने निम्नलिखित कवित्त और सवैया कहा था।

कवित्त

कोमल कमल ते कठोर कोटि वज्रहूते,
विद्रुम ते अरुन जोर दुष्टन को जाहिरै।

सुखद समस्त सहस सिंधुजा समान सो,
सीतल ससीते सत सिंधु सम गाहिरै।
'गंगाधर' गुन में गरूरो बल पूरो सदा,
जस को जरूरो भोन भीतर का बाहरै।
जगत निरौने नोने भूप विश्वनाथ जूको,
राखें हर हरषि 'हथेरिन के छाँहरै।

—०—

सवैया

निज इच्छित अङ्क करै दस गून,
मिलाय कै पन्द्रह दून करै।
पचगुन्न कै पन्द्रह फेर मिलाय कै,
फेर पचीस सो भाग भरै।
उबरै तेहि आठ ते फेर गुनै,
'द्विजगंग' सुअंक इकत्र धरै।
महाराज श्रीविश्वनाथ जू देव,
इती भर आयु लो राज करै।

—०—

समस्या-पूर्तियां

"याही दुख रहत देह दूबरी हमारी है"
भरि कै गंडूक में अचैयौ निज मेरो तात,
भ्राता को कलंकी कर दया न विचारी है।

बैरिन हमारी ब्रह्मानी सो कीन्ही प्रीत,
देखत हमारे लात पति को प्रहारी है।
'गंगाधर" मेरो, गृह कमलन कों छेद छेद,
मालका बनाय त्रिपुरार उर धारी है।
विप्रन के भौन मे न गौन करौ प्राननाथ,
"याही दुख रहत देह दूबरी हमारी है।

—७—

सवैया

मखतूल के पांवडे जो पै चलै,
मग मे श्रम बुन्द फुई सी परै।
पग की अरुनाई बिलोकि सहाव,
गुलाब की आब धुई सी परै।
'द्विज गंग' लै आऊँ मै कैसे यहां,
बिन चन्द्र मरीची उई सी परै।
"सुकमारता मञ्जु मनोहरता,
मुख चारुता चारु चुई सी परै"।

—०—

मत्त मतंगन की गति सो, गज गामिन नाम मिलौ सुखदानी।
त्यौं 'द्विजगंग' तजौ नहि ताहि, मराल हँसी करहै मनमानी॥

यों लचहै कचभारन लंक, न मानत संक निसंक दिखानी।
"मंदचलौ किन चन्द्रमुखी, पग लाखनकी अँखियाँ उरझानी"॥

—०—

खजुराये के मेले को लक्ष्य करके संसार की असारता का कैसा अच्छा चित्र आपने खींचा है देखिये --

कवित्त

आए बेपारी देस देसन के सौदागर,
नाहीं पहिचान कौन कौंको कहां झेला है।
एक साथ रहे ठये एक साथ उठे बैठे,
हँसे औ बताने भयौ चार रोज मेला है।
'गंगाधर' कहै माल बेच बेच भौन चले,
कोऊ भयो मीरा कोऊ दोला कोऊ तेला है।
खाकैं खूब रेला चले छोड़ कैं सहेला,
जौ जगत कौ झमेला खजुराये कैसो मेला है।

—०—

कवित्त

दूनो दाम दीनो चीन लीनो पैल सबहीने,
एक एक बोनो है नवीनो जोत जागैरी।
कर पै एर तैं पैर नाक में लपतैं लगै,
सकुच कए तैं नहीं चित्त अनुरागैरी।

"गंगाधर" हेली तू सहेली है सुघर मेरी,
भेद तो बतादे खेद जामें सब भागैरा।
तू ही नौ हेर कैधों दृष्टि में है फेर कछू,
बेसर को मोती मोंहि मानिक सो लागैरी।

—o—

साँझ होत आज वृषभानु की कुमारिका ने,
अंग अंग भूषन सिंगार सब पैरो है।
'गंगाधर' चोली कसि उन्नत उरोजन पै,
मोतिन को हार चारु छाती पै छैरो है।
मूंदत दृगन फेर मृगन बिलोकै खड़ी,
चकित चितौन चित्त कितहू ना ठैरो है।
चित्र को न चायौ नहीं इत्र मन भायौ ताहि,
आधौ भौन आधौ मित्र ताको लेत ऐरो है।

—o—

बुन्देलखण्डी फाग

जौ तिल लगत गाल कौ नीकौ,मनमोहत सब ही कौ ॥ जौ तिल० ॥
कै पूरन पूने के ससि में कुरा जमो रजनी कौ।
कै निर्मल दर्पन के ऊपर सुमन धरौ अरसी कौ ॥ जौ तिल० ॥
गरल कण्ठ लै आय बिराजौ कै पति पार्वती कौ।
'गगाधर' मुख लखत श्यामरो-राधाचन्द्र मुखी कौ ॥ जौ तिल० ॥

—o—

प्रभाती

जागौ श्रीकृष्ण चन्द्र नन्द के दुलारे ॥ जागो श्रीकृष्ण० ॥
निशा भई व्यतीतमान-छिपे चन्द उगे भान।
लाल लाल आसमान-अस्त भए तारे ॥ जागौ श्रीकृष्ण० ॥
सुरनर मुनि तीर जाय-नीर को लीनो जगाय।
कर कर स्नान ध्यान-वेद धुनि उचारे ॥ जागौ श्रीकृष्ण० ॥
होत बड़े प्रात काल-व्रज के गोपी गुवाल।
आये हैं गुपाल लाल-दरस को तिहारे ॥ जागौ श्रीकृष्ण० ॥
कोमल कर फेर फेर-मृदुल वचन टेर टेर।
जसुधा कहे बेर बेर-'उठौ लाल प्यारे' ॥ जागौ श्रीकृष्ण० ॥
देखत छवि जी जुडात-लखे आज श्यामगात।
'गंगाधर' नमत माथ मोर मुकुट वारे ॥ जागौ श्रीकृष्ण० ॥
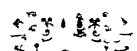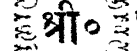
—०—

श्री० प० टीकारामजी पाठक शास्त्री

श्री० प० टीकाराम जी पाठक शास्त्री का जन्म चन्द्रनगर ग्राम परगना रजपुरा जिला बदाऊ मे वि० स० १९०६ वैशाख शुक्ल ७ को हुआ था। आप श्री० प० भागीरथ जी पाठक के पुत्र तथा श्री० पं० जवाहरलाल जी पाठक के पौत्र थे। आप माध्यदिनी शाखा वाले पाठक थे।

हमारे चरित्र नायक चार भाई थे और इन मे सब से छोटे आप ही थे।

आठ वर्ष की अवस्था तक आप घर ही मे पढ़ते रहे। यज्ञोपवीत होने के पश्चात् कर्णवास मे कुछ दिन तक अपने कुल-गुरु से विद्याभ्यास किया। तत्पश्चात् आपके पिता जी ने आपको कासगज पढ़ने को भेजा। यहा पर दैवयोग से एक दिन मथुरा निवासी पं० युगलकिशोर जी शास्त्री पधारे और साक्षात् होने पर वे आपको कासगज से अपने साथ लिवा ले गए और वहां अपनी पाठशाला मे आपको पढाया। यहॉ पर आपने अष्टाध्यायी और महाभाष्य समाप्त करके अन्यत्र जाने को इच्छा प्रगट की। इतने ही मे घर से अकस्मात् आपके पिता जी आगए और वे अपने साथ आप को घर लिवा ले गए।

आपके घर पहुंचने पर आपके विवाह की चर्चा छिडी। यद्यपि आप अभी विवाह नहीं करना चाहते थे किन्तु पिता जी के आग्रह से आपको विवाह कर लेना पड़ा। आपका बिवाह संभल के

पास सिकन्दराबाद नामक ग्राम के निवासी पं० तुलसीराम जी की सुपुत्री श्रीमती 'सुबुद्धिदेवी' से हुआ था। पं० तुलसीराम जी व्याकरण के अच्छे पण्डित थे, इस कारण इन्होंने अपनी पुत्री को हसिद्धान्तकौमुदी तक व्याकरण पढ़ाया था। ब्याह के पश्चात् हमारे चरित्रनायक फर्रुखाबाद चले गए और वहाँ आपने सिद्धान्त मुक्तावली पढ़ी।

तदनन्तर आप काशी चले आए यहाँ पर आपने प्रसिद्ध वैय्याकरण श्री० पं०सरयूप्रसाद जी से शब्देन्दु शेखर, परिभाषेन्दु शेखर, आदि ग्रंथ पढे। कैलाश वासी उमापति त्रिपाठी जी से दार्शनिक ग्रन्थ पढे। श्री स्वामी विश्वरूप जी से वेदान्त पढा। श्री स्वामी विशुद्धानंद जी से पूर्व मीमासा पढ़ी। इसके पाश्चात् श्री प० शिव कुथार जी के साथ आप नवद्वीप (नदिया) गए। यहाँ पर आपने प्रसन्न चन्द्र तर्कभट्टाचार्य्य जी से गदाधारी जागदीशी आदि न्याय के ग्रंथ पढ़े। तदनन्तर आप फिर काशी आए और श्री० स्वामी काष्ठजिह्व जी से आपने वेदान्त पढा। इस प्रकार ३२ वर्ष की अवस्था तक विद्याभ्यास करके आप काशी से लौटे।

काशी से लौटते समय मार्ग मे स्वामी दयानन्द से भेंट हुई। दयानन्द जी आप को देख कर बडे प्रसन्न हुए, और पाँच सात दिन एक स्थान पर साथ साथ रहे। यह स्थान कानपुर से पूर्व की ओर मदारपुर है। यहाँ से दयानन्द जी गङ्गा के किनारे किनारे पूर्व को गए और पं० टीकाराम जी किनारे किनारे चलकर हरद्वार पहुंचे। हरद्वार से हृषीकेश उत्तर काशी आदि स्थानो मे भ्रमण करते हुए गंगोत्तरी पहुचे और यहां पर आप एक मास रहे।

एक दिन अकस्मात् स्वप्न मे कुमारी के स्वरुप मे भागीरथी ने दर्शन देकर कहा कि "साध्वी स्त्री को निराबलब छोड़ कर इस अवस्था मे, इस प्रकार भ्रमण मत करो घर को जाओ" ऐसा कह कर दिव्य रूप अदृश्य हो गया। आप सवेरे ही घर को लौटे। धीरे धीरे भ्रमण करते हुए गढमुक्तेश्वर मे प० श्रीधर जी से भेट हुई। यहाँ कुछ दिन रहकर आप चन्द्रनगर पहुँचे।

यहाँ आकर आप ग्राम से बाहर पीपल के वृक्ष के नीचे एक कुटी बनाकर रहने लगे। एक कोपीन मात्र आपका परिधान था। सब शरीर मे गङ्गारज लगाना आप का अलंकार था। शास्त्र चर्चा ही एक मात्र कर्तव्य था। इस प्रकार कुछ दिन रहने पर दूर दूर तक आप की धूम मच गई। झुण्ड के झुण्ड लोग आप को देखने के लिए आने लगे। इसी शुभावसर मे वि० ११३७ माघ शुक्ल मङ्गलवार को आपके यहां एक पुत्र ने जन्म लिया जिनका कि नाम कविरत्न प० अखिलानन्द जी पाठक है।

पुत्र जन्म होने के उपरान्त यद्यपि स्वाभाविक प्रेम-बधन ने आप को बाध दिया किन्तु फिर भी आप अपने निश्चय से नही हटे और साथ मे सात महीने के पुत्र को लेकर आप भ्रमणार्थ फिर बाहर निकले और काशी, मथुरा, उज्जैन, ओंकारेश्वर, बम्बई, पूना अजमेर आदि स्थानो मे घूमते फिरते आप घर पहुँचे घर पहुँच कर केवल दो मास अपने देश मे रहे।

इस बार एक विचित्र घटना हो गई एक दिन आपने अपनी स्त्री से कहा कि "दैवादेश से हमने गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया है।

हमारी इच्छा नही थी । अब ग्रहस्थाश्रम का फल प्राप्त होगया है पितृ ऋण से हम दोनो मुक्त होगए है अब इच्छा हो तो इस पुत्र को लेकर घर मे रहो, हम जाते है, 'और यदि हमारे साथ रहना है तो घर का मोह छोडो, तापसी वृत्ति से रहकर जीवन व्यतीत करो दोनो बातो मे जो पसद हो सो करो । इतना कहना हमारा कर्तव्य था सो हमने कह दिया" आपकी यह बात सुनकर आपकी स्त्री ने कहा "यहां रहना मेरा धर्म नही है मै आपके साथ रहकर अपने कर्तव्य का पालन करूंगी, यहॉ मेरा कुछ नही है, आप ही सब कुछ है' ऐसा कहकर सब आभूपणादि उतार कर धर दिए । आपने वे सब चीजें अपने बडे भाई पं० जीवारामजी की स्त्री को दे दी फिर आपने 'अपनी स्त्री से कहा कि "काँच की चूड़ी भी उतार कर रख दो एक सादी धोती पहिन कर हमारे साथ चलो" आपकी स्त्री ने वैसा ही किया । पश्चात् भरा पूरा घर वार छोड़कर आप दोनो अपने एक मात्र पुत्र को साथ लेकर घर से निकले । वास्तव मे यह दृश्य जनता के लिए बड़ा ही करुणाजनक हुआ होगा ।

घर से चलकर पहिले दिन ये विचित्र दम्पती सिरसा मे पहुँचे । आपस मे इन्हे सस्कृत मे बोलते हुए सुनकर वहाँ के मनुष्य आश्चर्यान्वित हो गए । यहॉ से चलकर अपनी कुल देवी

श्रीअमंतिका देवी के स्थान मे पहुचे। वहाँ से भागीरथी के किनारे २ पुष्पावती, गढ़, गज, नागलघाट, हरद्वार, हृषीकेश होते हुए गगोत्तरी तक गए। महाराजा टिहरी (गढ़वाल) ने आपकी कीर्ति सुनकर आपके लिए वहुत सा वन वस्त्र भेट स्वरूप भेजा आपने वह सब लेकर गंगोत्तरी मे ब्राह्मणो को बाँट दिया। यहाँ पर आपने अपने पुत्र का यज्ञोपवीत सस्कार भी करलिया फिर वहाँ से देव प्रयाग, रुद्रप्रयाग, उत्तर काशी होते हुए भीमगोड़े को लौटे यहाँ पर आपने कुछ दिन निवास किया। यहाँ से हृषीकेश पहुँचे। वहां पर कई महीनो तक सन्यासियो मे वेदान्त का प्रवचन करते रहे। आपकी इस अपरिग्रह स्थिरता को देखकर सपरिग्रह सन्यासी लज्जित होते थे। यहाँ से चलकर आप नागलघाट पहुचे यहा से गंगा द्वीप में कुटी बनाकर कुछ दिन रहे यही पर आपको द्वितीय पुत्र का लाभ हुआ जिनका नाम पं० सुबोधचन्द्र पाठक है। महाराजा ताजपुर सोवी राधाकृष्ण वकील बिजनौर कुँअर भरत सिह जज आदि यहां पर आप से सत्संग करने के लिए आते थे। यहाँ से आप गंज और वहाँ कुछ दिन विश्राम करने के वाद आप बिजनौर के घाट गए।

बिजनौर मे कुछ दिन रहकर आप सहारनपुर गए। यहाँ एक बगीचे मे एक सप्ताह रहे यहां के कलेक्टर साहब रोज़

आपसे मिलने आते थे तथा संस्कृत में सम्भाषण करते थे उन्होने आपको कुछ दिन रोकना चाहा किन्तु आपने इनकार कर दिया और आप जगाधरी चले आए। यहा पर पं० हरनामदत्त जी का आतिथ्य ग्रहण किया। इसके पश्चात् अम्बाला होते हुए आप कुरुक्षेत्र पहुँचे और सूर्यग्रहण मे यहाँ स्नान करके जो कुछ अपने साथ वस्त्र पुस्तक पात्र आदि थे सबका दान कर दिया। फिर यहाँ से जितने कुरुक्षेत्र मे बन और तीर्थ थे सबका दर्शन किया। इस प्रकार कुरुक्षेत्र की यात्रा समाप्त कर आप हिसार पहुँचे। हिसार के रईसो ने आपका यथोचित सत्कार किया। आपने यहाँ प्राप्त किया हुआ द्रव्य यहीं के गरीब ब्राह्मणो को देकर मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया।

मरुदेश मे चूरू रामगढ़, चिड़ावा, लक्ष्मण गढ़, नवलगढ़, फतहगढ़, सूर्यगढ़, बिसाऊँ आदि जितने बडे बड़े नगर थे सब मे २। ४ दिन निवास करते हुए इस देश का परिभ्रमण किया जिन महानुभावो ने आपका सत्संग किया था उनमे १०, २० अभी जीवित है। रायगढ़ के सेठ श्रीयुत केशवदेवजी पोद्दार उनमे से प्रधान हैं। आपने उनका सभी व्यवहार अच्छी प्रकार देखा है। आपही के बगीचे मे रायगढ़ मे उन्होने निवास किया था। यहाँ पर प० स्नेहीराम जी आपके सहपाठियो मे से अन्यतम

थे। उनके आग्रह ही से आप यहा आए थे। मारवाड़ की यात्रा समाप्त करके आप दिल्ली आए यहां पर यमुनाजी के किनारे पर केवल तीन दिवस रहकर डासना पहुँचे। यहा पर प० श्रीधरजी के यहा एक दिन रहकर भटियाणा पहुँचे यहाँ पर भी अपने प्रिय मित्र प० हरजसरायजी के स्थान पर एक सप्ताह निवास किया। यहा से हापड होते हुए आप कर्णवास पहुँचे। कर्णवास से काशी तक एक किनारे पर जाना और दूसरे किनारे पर आना निश्चित करके प्रथम उत्तरी किनारे पर भ्रमण किया अबकी बार काशी पहुच कर गगापार मे निवास किया वही पर प० शिवकुमारजी शास्त्री आप से मिलने गए। दो मास तक उस पार रहकर वहीं से किनारे किनारे मिरजापुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। प्रयाग मे झूसी पर कुछ दिन निवास किया वहाँ से अपने सहपाठी महा महोपाध्याय आदित्यराम भट्टाचार्य्य जी के आग्रह से दारागज मे आए यहाँ पर पं० शेषधरजी से आपका बहुत प्रेम था। यहां से कूटेश्वर महादेव पर पहुँचे यहा पर नेपाल के महाराणा पद्मजंगजी ने आपका बड़ा सत्कार किया आपका अलग स्थान बनवा दिया और सब प्रकार का सुप्रबन्ध कर दिया। इतना करने पर भी दो सप्ताह से अधिक आप यहाँ नहीं ठहरे और राणा से प्राप्त बहुत सा द्रव्य यहीं के ब्राह्मणों को बांटकर धीरे

धीरे भागीरथी के दक्षिण तट पर चले और चलते २ फिर कर्ण-वास पहुँचे। इसके पश्चात् लाहौर मे गवर्नमेन्ट कालेज के प्रिंस-पल श्री० प० गुरुप्रसादजी ने जो कि आपके नवद्वीप के सह-पाठी थे, पत्रद्वारा विशेष आग्रह कर आपको बुलाया अत. आप सकुटुम्ब लाहौर पहुचे। वहाँ कुछ दिन रहकर आप काश्मीर गए, जबू मे वहाँ के महाराजा ने आपका बड़ा सत्कार किया और बहुत सा द्रव्य दिया जोकि आपने वहीं के ब्राह्मणो को बाँट दिया और अमृतसर की ओर चल दिए।

यहाँ से जालधर लुधियाना अम्बाला होते हुए रियासत पटियाला को प्रस्थान किया। पटियाला में कुछ दिन रहकर नाभा को चले वहाँ से दिल्ली होते हुए फिर देहरादून पहुँचे। यहाँ से मसूरी पहाड़ पर चढ़े यहाँ आपको एक पुत्री का लाभ हुआ। जिसका नाम श्रीमती शांतिदेवी था। यहाँ से आपने बद्रीनारायण को प्रस्थान किया बद्रीनारायण के दर्शन कर आप कर्णवास लौट आए। कर्णवास मे अबकी बार कुछ अधिक ठहरे। आपके सहपाठी पं० हरजसरायजी की प्रेरणा से सेठ फूलचद बागला ने एक बाग जिसमे एक स्थान भी था, हमारे चरित्रनायक को देकर रजिस्ट्री करवादी उसी मे आप रहने लगे।

यहां आप तीन वर्ष रहे तत्पश्चात् तीन चार वर्ष आप अनूप-शहर रहे। यहाँ पर स्वर्गवासी राजवैद्य पं० भगवान वल्लभजी

के मकान पर आप रहते थे। यहाँ से आप कुछ दिनो मथुराजी रहे। वहाँ से अपनी जन्मभूमि चन्द्रनगर देखने के लिए गए। वहां दो मास रहकर अत मे कर्णवास ही रहने का आपने संकल्प किया और अन्त समय तक वहीं रहे।

वि० स० १९५८ मे ५२ ,वर्ष की अवस्था समाप्त करके मार्गशिर शुक्ला पूर्णिमा को, ब्राह्म मुहूर्त मे प्रात' काल आपने पचभौतिक शरीर छोड़ा। मरने से एक सप्ताह पूर्व आपने विधिवत् अपनी मानसी गौ का दान किया। 'मानसी गगा' यह गौ का नाम था। ३ लच्च गायत्री जप का सकल्प दच्छिणा समेत देदिया, एक दिन पूर्व सध्यावन्दन करके सबसे प्रेम पूर्वक मिले। स्त्री पुत्रादि को अतिम सदुपदेश दिया। आशीर्वाद दिया, कर्तव्य पथ का सकेत किया। फिर ताजा गगाजल मँगाकर ३ आचमन किए और अग्नि की ओर उत्तर दिशा को मुख करके पुत्र की गोद मे बैठकर गङ्गालहरी का पाठ सुनते सुनते ब्रह्मरंध्र से अपने प्राणो को छोड़ दिया। खिले हुए खरबूजे की तरह आपका ब्रह्मरंध्र दिखाई देने लगा।

आप पक्के सनातन धर्मावलम्बी थे और शैव सम्प्रदाय के मानने वाले थे।

गङ्गोत्तरी, बद्रीनारायण, केदारनाथ, अमरनाथ, रामेश्वर आदि स्थानो का आप ने विधि पूर्वक दर्शन किया। अनेक बार

सर्वस्व दान किया। सम्मानार्थ अपने पास आए हुए अपठित ब्राह्मण को भी भगवद्विग्रह मान कर उसका चरण स्पर्श करना आप का नियम था। पुत्रो की तरह पुत्री का भी आप ने उपनयन संस्कार किया था।

आर्य समाज से विवाद मे आप सदैव सनातन धर्म का पक्ष लेते थे। ब्राह्मणो के लिए आप आदर्श थे, अश्वस्तनिक-शब्द को आप ने सर्वतोभावेन निभाया। अपरिग्रह स्थैर्य मे आप अद्वितीय थे। अपने जीवन मे आप ने 'सनाढ्य' शब्द को चरितार्थ कर दिखलाया।

आप के नियम थे कि "निवास की इच्छा से अन्यत्र न रह कर भागीरथी के तट पर रहना। सर्वदा देव वाणी मे सम्भाषण करना। ब्राह्मणो के यहा से भिक्षा मे सूखा अन्न लेकर भोजन करना, एकांत मे रहना, कलके लिए अपने पास कुछ न रखना। सन्तानो को संस्कृत विद्या पढ़ाना। आपत्तिकाल मे क्षत्रियो और वैश्यो का अन्न लेना। अपने ऊपर शूद्र तथा सकीर्ण वर्ग की छाया तक न पड़ने देना। सर्वदा गौ अपने पास रखना, शरीर में गंगारज लगाना, हाथ से द्रव्य न छूना," देखनेवालों ने इसी वृत्ति का पालन करते हुए प्राय आप को देखा है।

आप के बश में कविरत्न पं० अखिलानन्द जी पाठक आप के बड़े पुत्र हैं। दर्शनालंकार पं० सुबोधचन्द्र पाठक कनिष्ठ पुत्र हैं। चार पौत्र और तीन पौत्री हैं।

आपकी सुकविताओं के कुछ उदाहरण निम्न लिखित हैं—

(१)

रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः ।
पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य ॥
पुत्राः कलत्र मितरेन हिते सहायाः ।
सर्वं विलोकय सखे-मृग तृष्णिकाभम् ॥

(२)

रे चित्त चेत्तव रिरंसि तुमद्यकामः ।
सत्यं हितं प्रिय करं वचनं गृहाण ॥
त्युकुपटी क्षुसि सखे सकलं त्यजाद्य
श्री प्राणनाथ रघुनाथ पद विहाय ॥

(३)

स्फुरत्तडि ज्जिह्व मुखान्तराला ।
चलद्धकाली—द्विज भीत वाला ॥
काली व काला तिनि पीत हाला ।
मुहुर्मुहु र्वर्षति----मेघ माला ॥

(भाषा काव्य का नमूना)

माधव ! मन कृत जग व्यवहार ॥
क्षण में भवन सकल फिर आवत धावन करत अपार ।
नारि नयन अति प्रबल शिलो मुख जब बेधत उर पार ॥
तासु स्वरूप होत आतुर तब भूलत सकल विचार ।
विश्व रूप गुरु चरण कृपा बिनु कैसे लागे पार ॥
जो मन जीत कियो वश अपने सो जन भव से पार ।
माधव ! मन कृत जग व्यवहार ॥

—o—

श्री० पं० बालगोविन्दजी त्रिपाठी

श्री० पं० बालगोविन्दजी त्रिपाठी का जन्म आरा के एक सुप्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित वैद्य घराने मे संवत् १९०६ वि० मे हुआ था। आपके पूर्व पुरुष युक्त प्रान्त से यहाँ विहार मे आए थे। आरा नगरी मे यही एक तिवारी वंश सनाढ्य ब्राह्मणो का प्रसिद्ध है।

प० बालगोविन्दजी अपने माता पिता के केवल एक मात्र पुत्र थे। जब आप केवल पाँच ही वर्ष के थे आपकी माता अपने जीवन-नाटक का अन्तिम अभिनय कर गईं। सात या आठ वर्ष पश्चात् दुर्भाग्य वश आपको पितृ-शोक से व्यथित होना पडा। आपके पिताजी का नाम पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी था। वे अत्यन्त उदार, बुद्धिवान, बहुश्रुत और बड़े ही 'विद्याव्यसनी थे। किन्तु अभाग्यवश ऐसे पिता का साथ आपको अधिक समय तक नही रहा।

पांच वर्ष की अवस्था मे आपका अक्षरारम्भ कराया गया और ९ वर्ष की अवस्था मे आपका उपनयन सस्कार हुआ। घर ही पर आपने अपने प्रिय पिता से अमरकोष तथा लघु-सिद्धांत कौमुदी पढ़ ली थी। पिता की मृत्यु के बाद संस्कृत का अध्ययन करने प्रातः काल आप वैयाकरणकेसरी पं० रुद्रदत्तजी

मिश्र के यहाँ तथा रात्रि मे प० पीताम्बरजी के यहाँ पढ़ने जाते थे। इस समय आपकी अवस्था, केवल १४ या १५ वर्ष की थी, किन्तु आपका यह कठिन परिश्रम देख सभी चकित थे। एक अवसर पर प्रसन्न होकर आपके गुरु प० रुद्रदत्तजी ने कहा था कि "मेरी मृत्यु के बाद आरा नगरी मे संस्कृत विद्या की उन्नति कर नगर मे प्रधान पुरुष का आसन ग्रहण करनेवाला यदि कोई होगा तो वह बालगोविन्द ही होगा"। और समय पाकर यह वाणी सत्य ही हुई।

प० रुद्रदत्तजी के देहावसान के पश्चात् आप प० पीताम्बर जी से ही पढ़ते रहे। किन्तु आपके अध्ययन मे कई बाधाए पड़ीं। आपकी प्रथमा भार्या का देहावसान हो ही चुका था आपकी द्वितीया भार्या भी जब केवल एकमात्र पुत्री को छोड़कर कराल काल के बिकराल गाल मे प्रविष्ट हुई तब आप दुखित हो पढ़ने के लिए काशी चले आए। वहां रहकर आपने धर्मशास्त्र, पुराण और साहित्य को भली प्रकार पढ़ा।

आपके चाचा पं० महादेव दत्तजी आपको बार बार पत्र लिख आपको पुन. बिवाह ,कर लेने के लिए प्रेरित कर रहे थे और आरा लौट आने के लिए अनुरोध कर रहे थे किन्तु आपकी पुनः विवाह की इच्छा न थी अतः आप सर्वदा यही उत्तर देते

थे कि 'मै विवाह नही करूँगा' तब विवश हो अंत मे एकपत्र यह लिखकर कि "मै बीमार हूँ-आकर देख जाओ" चचाने भेजा। इस पत्र को पाकर आप शीघ्र ही चले आए और आपके आने पर चचाने आपको बिवाह करने के लिए बाध्य किया और तब विवश हो आपको बिवाह करना ही पडा। इस बिवाह के पश्चात् फिर आप कही नही गए। घर ही पर पढ़ते तथा कुछ विद्यार्थियो को पढ़ाते रहे। आपके पढ़ाने की रीति बहुत ही अच्छी थी। क्लिष्ट से क्लिष्ट बातो को विद्यार्थियो को सहज मे ही समझा देते थे। इसलिए बहुत विद्यार्थी आपसे पढ़ने आते थे और यथाशक्ति उन विद्यार्थियो को आप द्रव्य से भी सहायता करते थे।

चिकित्सा का काम आपके पूर्वजो ही से चला आता है इसलिए आपको भी यह काम करना ही पड़ता आपने स्वयं ही चिकित्सा सम्बन्धी सभी ग्रथो को पढ़कर उसमे पूर्ण योग्यता प्राप्त की। आपका विचार विद्यार्थियो के पढ़ाने के साथ साथ चिकित्सा करने का था। उस समय आपके चचा पं०महेशदत्तजी की चिकित्सा खूब चली हुई थी कई कारणो से उस समय आपकी चिकित्सा नही चली। उस समय इस कार्य्य मे सफलता नही प्राप्तहोने के कारण आपको सर्वदा के लिए तो नही किन्तु कुछ दिन तक अवश्य ही हताश होना पड़ा। किन्तु आपने विद्यार्थियो को पढ़ाना न छोड़ा।

श्री० भूदेव मुखोपाध्याय, जो उन दिनों इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स थे, आपकी विद्वत्ता पर तथा कविताओं पर मुग्ध हो आपसे आरा जिला स्कूल के प्रधान संस्कृत शिक्षक के पद को ग्रहण करने लिए अनुरोध करने लगे। यद्यपि आपकी इच्छा नौकरी करने की नहीं थी किन्तु मुखोपाध्यायजी के प्रेम-पूर्ण अनुरोध को उन्होंने उस समय स्वीकार कर लिया किन्तु कुछ ही दिन पश्चात् आपने त्याग पत्र दे दिया और दत्तचित्त हो चिकित्सा और ज़मींदारी के कार्य्यों मे संलग्न हो गए।

अनेकानेक कठिन से कठिन रोग-ग्रसित रोगियो को आपने अच्छा किया। प्रात. तथा संध्या समय आपके द्वार पर रोगियों की भीड़ लगी रहती थी। आप बड़े ही दयावान थे, जब किसी दरिद्र को आप रोग ग्रसित देखते तो आपका हृदय उसके दुःख को देखकर करुणा-परिपूर्ण हो उठता था, और बिना कुछ लिए ही उसकी यथेष्ट दवा कर दिया करते थे। आप प्रथम दरिद्र रोगियों को देखकर तथा दवा देकर पश्चात् औरो को देखते थे अत. आपकी प्रसिद्धि चारो ओर हो गई और राजा से लेकर रङ्क तक सभी आपही को दवा करने की इच्छुक रहते।

बाहर जाने की फीस आपकी एक दिन की १००) सौ रुपया तक थी इससे ज्ञात हो सकता है कि विद्वान होने के साथ ही साथ आप कैसे चिकित्सक थे।

सूर्यपुरा, सुरगुञ्जा, कन्हौलीस्टेट के तथा डुमराँव के स्वर्गीय महाराजा साहिब श्रीराधिकारमण प्रसाद सिहजी के तो आप एक प्रकार से राज्यवैद्य ही बना दिए गए थे। संदेह नहीं कि चिकित्सा से आपने असीम धन उपार्जन किया किस महीना मे कितना आता है ठिकाना नही था किन्तु आपका उपार्जित आधा से अधिक द्रव्य धर्मकार्य्यों मे व्यय होजाता था।

कार्य की अधिकता को देखकर आपने एक सस्कृत पाठशाला खोलने का संकल्प किया क्योकि यहाँ विद्यार्थियो की भीड़, वहां रोगियो का जमघट और जमीदारे के पचड़े ये सब कार्य्य एक ही मनुष्य से सम्पादन होना कहाँ तक सम्भव है यही सब सोचकर आपने संवत् १९४८ बसन्तपंचमी के दिन "वर्णधर्मोपयोगिनी" नामक सस्कृत पाठशाला और इसी नाम की एक सभा स्थापित की।

इस संस्कृत पाठशाला ने सस्कृत प्रचार का विहार मे अच्छा काम किया और पश्चात् यही "वर्णधर्मोपयोगिनी" संस्कृत पाठशाला कालेज रूप मे परिणित हुई और इस का नाम "सस्कृत महा विद्यालय" रक्खा गया और सरकार से पाठशाला को २००) मासिक सहायता भी मिलने लगी। इस समय इसमें एक प्रिन्सीपल तथा १३ प्रोफेसर पढ़ाने के लिए नियुक्त है। आपने संस्कृत पाठशाला स्थापित करने के साथ साथ एक अपर प्रायमरी पाठशाला भी स्थापित की थी जो कि अब तक है।

आरा मे हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये आपके उद्योग से सन् १९०३ मे नागरी प्रचारणी सभा की भी स्थापना हुई

और आप आजन्म इसके सभापति रहे। आपके सभापतित्व में सभा ने काफी उन्नति की, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के बाद उस समय आप ही की नागरी प्रचारिणी सभा थी इसमे सन्देह नहीं। इसके पुस्तकालय मे इस समय असंख्य पुस्तके हैं विहार की कचहरियो मे नागरी लिपि के प्रचार का श्रेय इसी सभा को है।

आपका आचार विचार बडा ही शुद्ध था आप ब्राह्म मुहूर्त मे अर्थात् चार बजे प्रात काल उठकर सूर्योदय के पूर्व नित्य क्रिया से निवृत्त होजाया करते थे तथा स्नान, पूजा, सध्या आदि से निवृत हो ११ बजे तक रोगियो को देखते फिर स्नान कर पालकी पर चढ़ आप सिद्धनाथ तथा दुर्गा पूजा को जाते और तब कहीं १२ बजे आकर भोजन करते। बारहों महीने, क्या जाड़ा क्या गर्मी, क्या बर्सात आपका यही नियम रहा।

रात्रि मे ८ या ९ बजे के बाद श्रीसिद्धनाथ और अरण्य दुर्गा के दर्शन करने आप फिर जाते गर्मी के दिनो मे श्री सिद्धनाथ जी की पूजा करने मे आपको कुछ और देरी होती थी इसका कारण यह था कि उन दिनो "शिवजी" पर आप नित्यप्रनि एक घड़ा गंगाजल चढ़ाते थे।

आपका सब से बढ़कर एक यह नियम था कि आप पानी नहीं पीते थे। पानी के स्थान मे गंगाजल ही पीते थे। और आपने अपना यह प्रण जन्म भर निबाहा

नव रात्रि के दिनो मे आप श्रीदुर्गा की बड़ी पूजा करते।

आरा मे शंकर जी के प्रसाद को लोग नही खाते थे आपने शास्त्रो को भली प्रकार देख कर यह निर्णय किया कि शिव-प्रसाद अवश्य खाना चाहिये खाने मे कुछ दोष नही है अतः थोड़े ही दिनो मे उस ओर शङ्कर–प्रसाद खाने का खूब प्रचार होगया।

आप मन्दिरो का जीर्णोद्धार स्वयम् कराते तथा औरो से भी करवाते थे।

जातीय कार्यों मे भी आप सदैव भाग लिया करते थे आपका कहना था कि "जाति की भलाई जितनी जाति का व्यक्ति कर सकता है उतनी दूसरे से होना सम्भव नही"। "इन्ही ब्राह्मणो की भलाई तथा उन्नति से मेरी भी भलाई तथा उन्नति है।"

कितने ही विद्यार्थियो को आपने अपने खर्च से पढ़ने को काशी भेजा कितने ही विद्यार्थियो को आपने बिहार तथा बनारस परीक्षा मे अपनी ओर से फीस दे सम्मिलित करवाया। कितने ही विद्यार्थियो को आप पुस्तके आदि मँगवा देते और कितने ही विद्यार्थी ऐसे थे जो आप ही के गृह पर रहते और सभी कुछ आप ही से पाते थे।

कितनो ही कन्याओ का विवाह आपने अपने द्रव्य से करवाया। आप का कहना था कि "एक बेचारे दरिद्र ब्राह्मण की कन्या का विवाह करादेना असख्य गौ दान के बराबर है"।

यो तो आप सभी की सहायता करने को प्रस्तुत रहते थे किन्तु ब्राह्मणो के और विशेष कर स्वजाति के सच्चे सेवक और सहायक थे।

सनातन धर्म सभा के भी आप सभापति थे आप के सभापतित्व मे उसका कार्य्य बहुत ही सराहनीय रहा यह कहना नही होगा कि जो जो सस्थाएं आप के सभापतित्व मे रही उन की उन्नति सतोष जनक होती रही ।

आप का भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, माननीय प० मदनमोहन मालवीय, पं० अम्बिकादत्त जी व्यास, काशी निवासी प० सुधाकर द्विवेदी त्र्यम्बक शास्त्री तथा प० अयोध्यानाथ शर्मा आशु कवि आदि प्रभृति सज्जनो से घनिष्ट प्रेम और पूर्ण परिचय था ॥

आप इतने विद्या व्यसनी थे कि वृद्ध होने पर भी रात्रि मे १०, ११ बजे तक बैठे २ पुस्तकावलोकन किया करते थे। कई मासिक और साप्ताहिक पत्र पत्रिकाएं आप के पास आती थीं। संस्कृत की पुस्तको का आप के यहाँ अच्छा सग्रह है ।

आप मे संस्कृत की कविता करने की अच्छी शक्ति थी। आप कमलबन्ध, चक्रबन्ध, खड्गबन्ध आदि हर प्रकार की कविता करते थे। आप की कविताए बड़ी ही सरल होती थीं।

आपने वि० सं० १९६९ वैशाख शुक्ल १० शुक्रवार को इस असार संसार को छोड़ परलोक यात्रा की थी।

नोट—अधिक प्रयत्न करने पर भी आपकी सुकविताएं प्राप्त नहीं हो सकीं है। द्वितीय सस्करण म इस कमी को पूरा करने का भरपूर यत्न किया जायगा--

--सम्पादक०

श्री० पं० दुर्गादत्तजी द्विवेदी शास्त्री
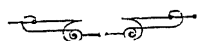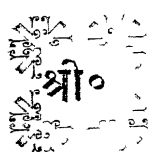
श्री० प० दुर्गादत्तजी द्विवेदी शास्त्री का जन्म स० १९१३ पौष शुक्ला ७ को वृन्दावन मे हुआ था। आपके पूज्य पिता जी का नाम श्री०प० नन्दकिशोर देव शास्त्री सिद्धांत वागीश, पौराणिकाचार्य था। आप सस्कृत भाषा के पूर्ण विद्वान् और सस्कृत हिन्दी दोनो भाषाओ के प्राकृतिक सिद्ध हस्त कवि थे। आप मे जाति हितार्थ कुछ भी अदेय न था। आप समान नर रत्नो के प्रताप ही स श्री सनाढ्य महामण्डल आगरा और सनाढ्योपकारक की नीव जमी थी। आप उपरोक्त सस्था को आजीवन साहाय्य करते रहे। आप राष्ट्र भाषा से अपरिचित होते हुए भी बडे बडे साइसवेत्ताओ (वैज्ञानिको) को निरुत्तर करने मे सर्वदा समर्थ थे। आपका व्याख्यान अत्यन्त प्रभावोत्पादक, सरस-सरल एवं ओजस्वी होता था और कई भाव अनोखे ढंग के निकलते थे। आप की लेख शैली विनोद-जनक और उत्तेजक होती थी। आप पुराने ढग के विद्वान होते हुए भी फिलासफी के पूर्ण ज्ञाता थे। आप बड़े ही उदार गम्भीर और भगवत् भक्त थे। आप सनातन धर्म और सनाढ्य महामण्डल के अवैतनिक सच्चे स्वार्थ त्यागी उपदेशक थे।

आप की प्रकृति सरल एव सौम्य थी। आपने यो तो १०५ ग्रंथ आत्मीयानुभव से रचे ही थे किन्तु 'श्रीमद गोपाल सहस्र नाम' का भाष्य प्राय सभी विद्वज्जन मण्डल मे मान्य हुआ था।

आप ने इस मे सनातन धर्म का खासा फोटो खीचा है। प्रशान्त-भाव से विपक्षियो के निष्पक्ष स्पष्ट उत्तर दिये है। आप ने भगवत भक्ति भरित 'हरि विहार चम्पू" नामक सस्कृत ग्रंथ ६००० श्लोको मे रचा था। जिसमे आप ने अखिल मनोरथ के साधन की चेष्टा की है। उसका अनुवाद आप के सुयोग्य पुत्र प० उमा शङ्कर जी शास्त्री कर रहे है।

आपने ज्येष्ठ कृष्ण १ रविवार को गोलोक गमन किया।

आप की सुकविताओ के उदाहरण निम्न लिखित हैं---

जाति-महिमा

जब तलक नहि जाति हित मे चित्त अपना लायगा।
तब तलक इस भूमिपर-नहिं कीर्ति उन्नति पायगा॥
जाति पाँति विसार अपनी-को न नीचे को गिरा।
आंखि खोलि विचार देखिय-जाति मे सब सुख भरा॥
देख चिड़िया मुर्ग़ वायस-जाति हित मे लग रहे।
जाति रक्षा करत वानर- हाय! नर हम भग रहे॥
जाति ईश्वर ने रची है-बुद्धि से चित लेख लो।
जाति सुख दुख काम आवे-प्रेम कर यह देख लो॥
जाति का उपकार कर यहँ-कौन उन्नति पर चढ़ा।
देख लो चीटे से कीड़े-है सभी से दल बढ़ा॥
जाति महिमा को विचारो-धर्म की रक्षा करे।
जाति का कछु होत झगड़ा-जाति मे निपटा करे॥

जाति का कीया जो निबटारा-उसे सब मानते।
मानती है राजपरिषद भी, उसे सब जानते॥
जाति भक्ति विरक्त दुख की भुक्ति सुख भण्डार की।
मुक्ति की सोपान है-यह भक्ति ब्रह्म अपार की॥
जाति गंगा पाप नाशे-जाति-धर्म प्रसिद्ध है।
देख लो इतिहास पहिला-किस प्रकार विवृद्ध है॥
यह परम उपदेश मेरा-चित्त जिसके आयगा।
कहै दुर्गादत्त इह सुख अन्त सुर पुर जायगा॥

—०—

नोट—श्री० पं० उमाशंकर जी शास्त्री वृंदावन को अनेक पत्र लिखे गए किन्तु आपने न तो पूज्य द्विवेदी जी का जीवन चरित्र ही भेजा और न कविताओं के उदाहरण और पुस्तकों की नामावली ही अतः 'उपकारक' में प्रकाशित जीवन चरित्र ही हम पाठकों की भेंट कर रहे हैं यदि हो सका तो द्वितीय संस्करण में विस्तृत जीवन चरित्र उपलब्ध कर प्रकाशित करने का प्रयत्न करूंगा सम्पादक

—०—

श्री० पं० व्रजवल्लभ जी मिश्र कोपाचार्य

श्री० पं० व्रजवल्लभजी मिश्र का जन्म वि० स० १९२२ मे सासनी जिला अलीगढ़ मे हुआ था। आपके पिता जी का नाम प० वशीधरजी मिश्र था। आप अपने नगर के एक उत्तम पौराणिक और ज्योतिषी थे। आपका गोत्र भारद्वाज, यजुर्वेद, माध्यदिनी शाखा, त्रिप्रवर, अल्ल बिरथरे, और मिश्र पद था। आपने अपने वश के विषय मे जयपुर-विहार मे इस प्रकार लिखा है —

कवित्त

भारद्वाज ऋषि के सुगोत्र विषै हूं सनाढ्य,
वेद यजु शाखा माध्यदिनी ही बखानिये।
यज्ञ उपवीत मध्य राजत प्रवर तीन,
सत है सुपथ अल्ल बिर्थरे सुमानिये।
शुभ कुलदेवी पर्णबासिनी विचित्रा चैत्र,
आश्विन की पूर्णिमा मे पूजन प्रमानिये।
सासन बगढ़हट्ट पदवी है मिश्रजी की,
परिचै हमारौ आप याही विधि जानिये।

—o—

दोहा

निकट हाथरस सासिनी-जाट सुदृढ़ गढ जान।
पहुपसिह राजा भये-जाने सकल जहान॥

भारद्वाजी गोत्र के–इहि मधि नगर ललाम।
'वल्लभ'–पुरुषा बास किय–मिश्र बश अभिराम॥
उदयराम जो कौ उदय–जानौ जाति महान्।
तिन के बंशीधर सुअन–गुन–आकर मतिमान॥
वैद्य, पुराणी, ज्योतिषी–पिता पितामह जान।
पुरजन परिजन जातिजन–कियौ बड़ौ सन्मान॥
पिता फारसी हू पढ़े–जिहि साधे भल काज।
सुतन पढ़ाई हित सहित–भाषा इंगलिश राज॥
विद्या ही मे रत सदा–मित भाषी गम्भीर।
इह विधि बितये तीन पन–त्यागौ सुखी शरीर॥
बंशीधर के हम भये–तीन तनय अभिराम।
जेठे छीतरमल चतुर–मझले आशा राम॥
सब से छोटौ मन्द मति–हौं ब्रजवल्लभ नाम।
ह्वै बावन तोरयो चहौं–उच्च पेड़ के आम॥
ब्रज अन्तर्गत सासनी–ब्रज हद ग्राम सुपास।
ब्रज वल्लभ ब्रजवासि है–ब्रजवल्लभ कौ दास॥
नाम मात्र वल्लभ कियो–सग्रह तीन ज़बान।
मति गति यति नहि काव्य मे–छोट खोट बहुजान।

—:o:—

बाल्यावस्था मे आपको हिन्दी का बोध कराने के पश्चात प्राचीन रीत्यानुसार सस्कृत की शिक्षा दी गई। पश्चात् हिन्दी

उर्दू की मिडिल परीक्षाएं आपने सासनी ही से पास की। तदनन्तर आपने अलीगढ़ और जयपुर मे अंग्रेजी की एफ० ए० कक्षा तक शिक्षा पाई। पश्चात् जयपुर और कलकत्ता आदि मे आप कई स्कूलो मे मास्टर एव हेडमास्टर रहे। पश्चात् आप कई राजकुमारो के ट्यूटर और गारजियन (Tutor and Guardian) रहे। कुछ राजाओ के आप प्राइवेट सेक्रेटरी भी रहे थे।

जाति-सेवा की आपको सच्ची लगन थी, और सनाढ्य-जाति के उन्नत होने के लिए आपने सराहनीय उद्योग और परिश्रम किया। "सनाढ्य" और "सनाढ्योपकारक" नामक जातीय पत्रो के आप अवैतनिक सम्पादक रहे। आप आदर्श सदाचारी और दूरदर्शी थे। आपके विचार बड़े ही उदार थे आपका भाषण बडा ही मधुर और गभीर होता था। आप जो कहते वही करते भी थे। कुरीतियो के वहिष्कार के लिए जिस सरगर्मी से आपने काम किया और उपदेश दिया उसी प्रकार स्वयं अपने पुत्रो और सम्बधियो के व्याह मे उनका वहिष्कार करके दिखा दिया।

आप प्राकृतिक कवि थे, ग्रथ रचना का आपको व्यसन सा था। सेवा वृति मे रहते हुए भी आप पुस्तके लिखते और प्रकाशित करते रहते थे। पश्चात् मातृभाषा की सेवा और जातीय कार्य्यों के प्रचार के लिए आपने अलीगढ़ मे अपना निज का वल्लभ-प्रेस खोला जो कि आपके समय मे खूब चलता रहा।

आपने कई ग्रंथो की रचना की है उनमे से मुख्य मुख्य के नाम निम्नलिखित हैं —

(१) अंग्रेजी-हिन्दी-व्यौपारिक कोष ।
(२) अंग्रेजी-हिन्दी तार शिक्षक ।
(३) छदोबद्ध अंग्रेजी-हिन्दी वल्लभ कोष ।
(४) लुगाते वल्लभ मजमूअह अंग्रेजी उर्दू ।
(५) त्रैभाषिक-व्याकरण-शब्दावली ।
(६) राज शिक्षा ।
(७) छंदोबद्ध जयपुर-विहार ।
(८) पदार्थ-संख्या-कोष ।
(९) अन्धे की लाठी ।
(१०) त्रैभाषिक-कचहरी-कोष ।

* इनमे से बहुतो के तो चार चार और पॉच पाँच संस्करण होगए है और उनका अच्छा प्रचार हुआ है । अन्तिम पुस्तक त्रैभाषिक-कचहरी-कोष पर तो आपको कई सभाओ से पद, सुवर्ण पदक और महाराजा अलवर, भरतपुर आदि से कई सहस्र मुद्रा पारितोषक रूप से मिले थे ।

आपने ५९ वर्ष की अवस्था मे वि० सं० १९८१ मे गोलोक गमन किया था । आपके दो पुत्र प० रमावल्लभ जी मिश्र तथा पं० उमावल्लभजी मिश्र आजकल जयपुर राज्य मे निवास करते हैं । ये भी बडे ही सुशील योग्य और जाति-सेवा के प्रेमी हैं । आपकी सुकविताओ के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है ।

जयपुर छवि वर्णन करते हुए आप लिखते है:—

(दोहा)

जयपुर नगर सुरम्य छवि–लखि चित बढत अनन्द ।
मानौ श्री जयशाह को–उग्यो विजय यश चन्द ॥
श्री जयसिंह नरेश ने–ऐसौ रच्यो निवास ।
ब्रज तजि श्री गोविन्द जी–आय कियौ तहँ बास ॥
जयपुर सुरपुर सरिस के–निर्माता जयसिंह ।
रामसिंह वर्द्धक भये–शोधक माधवसिंह ॥
जयसिंह कल्पद्रुम जहां–सुरपुर सो पुर सोह ।
झरत सुनिर्झर जल प्रभा–मन्दाकिनि सम जोह ॥
जयपर जयसिंह नृपतिवर–बनवायौ अति सुच्छ ।
चकित भयौ पुरहूत हू–लखि अमरावति तुच्छ ॥
श्री जयशाह नरेश ने–बनवायौ जयपूर ।
इहि लखि पर पुर लखन की–इच्छा होय न भूर ॥

—·o·—

भुजंग प्रयात

सही सूत तें ना दुकाने बढ़ी है-
मनो काम सिल्पी बनाके गढी है।
अजब चौहटे चारु बाजार सोहै-
गली औ गली-चौपड़े चित्त मोहै ॥
अटा हाँ घटाकी छटासी विमोहै-
बियद्‌गङ्ग की धारसी सभ्र साहै ।

जिन्हो मे बनी पुत्तली पंचरंगी-
मनो-नृत्य कर्त्री जु लै लै सरंगी ॥

—:o:—

किती नागरी आगरी बाँधि गोलै-
चली जात है राह मे कै कलोलै।
किती ताफता, बाफ़ता पैन्हि डोलै-
सही राग औ तान की खान खोलै।
रणन्नूपरो की रणत्कार रूरी
झनत्कार भूषानि की होत पूरी ॥
सुरंगी दुरंगी चलैं पैन्हि सारी-
जिन्हे देखि के देवहू हों सुखारो ॥

—:o:—

स्वर्ण रचित, कुन्दन खचित, पन्नन जटित सुहार।
पहिरि पहिरि उमँगी फिरै-वर जयपुर की नार ॥

सवैया

विकसे कचनार अनार कहू-
शुभ शोभ सजे बर जूथिन मे।
गुल लाल गुलाब गुलालन की-
निकसी कलियां निज तीथिन मे ॥
बर वल्लभ मंजरि मंजुल पै-
गुन गावत भृंग सुगींथिन में।

कुसमायुध सेन समेन अहे-
ऋतुराज लसै वन-वीथिन मे ॥

—:o:—

आयु मृकण्ड के सूनु सी होय-
बढ़ै नित ही 'ध्रुव लोमस की सी।
'वल्लभ' ज्योति तिहारी बढै नित-
ज्यो वृष सूर्य्य मरीचि मई सी ॥
शत्रु तिहारे पिरै नित ही नित-
तैलिक जंत्रहि ज्यो तिल तीसी।
कीर्ति तिहारी दिगन्तहि धाम-
चढै सुर लोकहि स्वर्ग नदी सी ॥

—:o:—

छंदोबद्ध अंग्रेजी हिन्दी वल्लभ कोष, चतुर्थ संस्करण, के छंदो का नमूना भी देखिए —

Nouns संज्ञा	छंदो के अंग्रेजी शब्द	
फादर बाप, मदर है माई।	Father	Mother
सिस्टर बहिन, ब्रदर है भाई	Sister	Brother

Adjectives विशेषण

प्रापर, जस्ट और राइट, दुरुस्त। Proper just, Right
आईडिल, लेज़ी जानो सुस्त। Idle, Lazy

—o—

श्री० पं० सत्यनारायण जी कविरत्न

श्री०
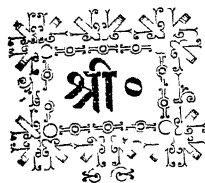
पं० सत्यनारायण जी कविरत्न का जन्म माघ शुक्ला १३ चन्द्रबार ५०। २१ पर सवत् १९३६ वि० मे ग्राम सराय (सिकन्दरा राऊ अलीगढ) मे हुआ था। आप धाधूपुरा आगरा मे निवास करते थे। हिन्दी ससार के उज्वल रत्न होते हुये भी आपकी सादगी हृदय ग्राहिणी थी। आप बृन्दावनी मिर्जई और दुपल्ली टोपी पहिना करते थे। आपके रहन सहन और सदगीको देखकर यह अनुमान करना कठिन था कि आप बी० ए० तक शिक्षा पाये है। आप प्रारम्भिक शिक्षा काल मे ही कविता करने लग गये थे। किन्तु आपकी वे कविताये अधिकतर शृङ्गार रसपूर्ण होती थीं। एकबार आपने अपनी ऐसी ही एक कविता अपने गुरु बाबा रघुबरदास जी को सुनाई। महन्त जी उसे सुनकर अधिक नाराज हुये और पाँच सात धौल भी जमा दी। उन्होने कहा कि "अरे अभी सेऐसी वाहियात कविता बनावै है तो आगे चलकै न जाने का करैगो, खबरदार जो अबते आगे ऐसे छन्द बनाये"।

उस समय की कविता के उदाहरण सुन लीजिये—

चाहै चवाब चहूंधा करौ सतिदेव जू जोरि कहौ किन कासो।
काहू की हां पै चलै न सखी नहि जानत रीझत कौन अदा सो॥
राधा विसाखा रही इक ओर जू लेहु लगाय सभी ललिता सो
जीवन जोर मरोर मे आयके कूबरी हू नहि ऊबरी जासो॥

—०—

खन्दक खाई लखै न अगार जू नैक ज़ुबान सम्हारि कै बोलौ।
सत्य जू खूब फिरौ निमटे संग बांधि के ग्वालन को यह टोलौ॥
वाह! अबीर सो आंखिन फेरत खेलनो हो रग गॉठि को घोलौ।
जीजा की सौंह परे सरको तुम औरुही मीजॉ टटोरत डोलौ॥

—.०.—

पाठक इस कविता को पढ़े और 'कविरत्न' जी की अवस्था पर ध्यान करे।

आपकी सादगी के कारण इदौर के अष्टम-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर प्रथम दिवस एक घटना होगई थी उसे पाठको के मनोरजनार्थ हम यहॉ पर श्री० पं० बनारसी दासजी चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित आपकी 'हृदय-तरङ्ग, की प्रस्तावना से उद्धृत कर देना आवश्यक समझते है।

"सत्यनारायण जी अपने उसी सादा वेप मे गमारु मिर्जई पहिने और दुपल्ली टोपी लगाए प्रत्येक दरवाजे पर जाकर अन्दर जाने के लिए कहते कि "दद्दू हमैऊॅ घुसि जान देउ, हमऊ देखिगे" इस तरह की भाषा सुनकर और आपका वेष देखकर अग्रेजीदा स्वय सेवक उन्हे फटकार देते थे। अस्तु इसी प्रकार वे जिस दरवाजे पर भी जाते दुर दुराये जाते थे अन्त को बडी कठिनता से वे मण्डप मे घुस सके"।

दूसरे दिन सब कार्य्यकर्ताओ के साथ जाने के कारण ऐसी कठिनता तो न हुई किन्तु एक और मजेदार घटना घट गई, सत्यनारायणजी मच पर एक कुर्सी पर जिस पर ४०० व्यक्तियो

के बैठने की जगह थी बिठला दिए गए थे। किन्तु किसी राव बहादुर के कहने से एक स्वय सेवक ने आपके गँवारू कपड़े देखकर आपको कुर्सी से उठा दिया और करारी डांट बताई "कहाँ के आदमी हो ? यहाँ क्यो घुस आए" देखत नही यहाँ कौन बैठे है ? ' आगए कही से कुर्सी पर बैठने के लिए"

कविरत्नजी अपराधी की तरह हाथ जोडे हुए खडे थे और कह रहे थे "महाराज मै एक गरीब ब्राह्मण हो, और सम्मेलन केई एक अधिकारी मोइ ह्या वैठारि गए हे' इसी अवसर पर मै (श्री० प० बनारसी दासजी चतुर्वेदी) पहुच गया और मैने स्वय सेवक जी की इस सेवा की प्रशन्सा करते हुये उनसे कहा "जानते नही ये कौन है" "ये कविरत्न प० सत्यनारायण जी है" मंच के कोट-बूटधारी महाशयो तथा स्वयसेवको को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। और सत्यनारायण जी वही बिठला दिये गये।

कहने का तात्पर्य्य यह कि आप बडे ही सरल स्वभाव के तथा सादगी प्रिय व्यक्ति थे।

कविरत्न जी के हृदय को करुणारस विशेष आकर्षित करता था। इसका कारण यही था कि आप पर करुणा जनक स्थिति का विशेष प्रभाव पड़ा था। आपका जन्म माता की अत्यन्त करुणोत्पादक दशा मे हुआ था। आपकी बाल्यावस्था भी इसी हालत मे व्यतीत हुई। यद्यपि बाबा रघुबरदास के यहाँ आश्रय मिलने के बाद आपकी अवस्था सुधर गई थी लेकिन माता की मृत्यु के अनंतर फिर आपकी स्थिति करुणाजनक होगई थी। सांस की बीमारी ने तो आपकी हालत अत्यन्त ही दयनीय बना दी थी।

इनके अशान्ति मय !गृहजीवन ने तो रही सही कमी पूरी करदी थी, गृहजीवन से पीड़ित होकर ही आपने यह निम्न लिखित कविता लिखी होगी।

भयो क्यो यह अन चाहत को सङ्ग

सब जग के तुम दीपक मोहन प्रेमी हमहु पतंग।
लखि तव दीपति-देह-शिखा मे-निरत विरह लौ लागी॥
खिचति आपसों आप उतहि-यह ऐसी प्रकृति अभागी।
यदपि सनेह भरीं सब वतियां-तउ अचरज की बात।
योग वियोग दोउन मे इक सम-निन्य जरावत गात।

❀ ❀ ❀ ❀

यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु का इन बातनि हाथ तिहारे आवै॥

—:※:—

परेखो प्रेम कियो को आवे

कहा कहें, मन मूढ बडो यह जो तुम्हरे ढिग जावे।
होती बात हमारे बस की कबहुँ न लेते नाम॥
करतो चाहे जगत भलो ही कितनौ हू बदनाम।
जो चाहत तुमको निस ,बासर प्रेम प्रमत्त अपार॥
तिनके संग अनोखौ ऐसौ करत आप ब्यौहार॥

❀ ❀ ❀ ❀

तन मन धन सर्वस्व निछावर करैं जो तुम्हरे हेतु।
तिनके बँट निर्दयता ऐसी कैसी दया निकेत॥

❀ ❀ ❀ ❀

सोवत सुखद शेषशय्या पै करत प्रमोद अशेष।
जिए मरे वरु कोऊ जगत मे चाहे रहे न शेष॥

—o—

किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी आप योग्यता और अपूर्व शांति के साथ अपनी इन सब कठिनाइयो से मुडभेड़ करते रहते थे। इन कठिनाइयो से आप घबडाकर अत समय तक कभी विचलित होते नही देखे गए। आप के जीवन—नाटक का अंतिम पर्दा तो यथार्थ ही अत्यन्त-करुणाजनक है। आपके ग्राम धांधूपुरा मे प्लेग का प्रकोप हो रहा था आप प्लेग से बीमार एक स्त्री को देखकर लौटे और बोले "जी मचलाता है, जाने क्या हो गया, कसरत करके एक साथ रोटी खाली इससे या न जाने किससे"। कै, दस्त होने लगे, डाक्टर बुलवाया गया किन्तु अधिक रोगी देखने के कारण डाक्टर भी समय पर न आसके। अत आपको घर ही पर दवाई दे दी गई जिससे कै दस्त तो बंद हो गए किन्तु थोड़े समय पाश्चात् अचानक कमर मे दर्द होने लगा और सबके दाबने पर भी आप की बेचैनी दूर न हुई और अंत मे इसी से आप का ता० १६--४—१९१८, को दोपहर को जीवनान्त हो गया।

यद्यपि अब आप नही हैं किन्तु आप की उत्तम रचनाएं आप को सदैव अमर बनाए रहैगी। ऐसा कौन सा हिन्दी भाषा भाषी व्यक्ति होगा जो आप की रचनाओं को पढ़कर मुग्ध न हो जाता हो। और ब्रजभाषा के आप वास्तव ही मे अद्वितीय और अन्तिम कवि थे।

कविरत्न जी प्राकृतिक कवि थे। आपकी कविता मे भावों की प्रौढ़ता, पद लालित्य, शब्द योजना आदि देखते ही बनती है। ऐसा कौन हृदय होगा जो आप की कविता को पढ़कर न फड़क उठै। आप का एक एक पद्य नैसर्गिक भावो से परिपूर्ण है। आपकी रचित निम्न लिखित पुस्तकों का पता चलता है।

(१) कविवर भवभूति कृत 'मालती—माधव' नाटक का गद्य-पद्य मय हिन्दी भाषानुवाद।

(२) कविवर भवभूति कृत 'उत्तर राम चरित्र नाटक' का गद्य-पद्य मय हिन्दीभाषानुवाद।

(३) 'हृदय—तरंग' यह आप की फुटकर कविताओं का संग्रह है जो कि श्री० पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत तथा "श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

उपरोक्त तीनों पुस्तकें श्री नागरी प्रचारणी सभा, आगरा से प्राप्त हो सकती है। आप की सुललित कोमल रचनाओं में से कुछ हम यहाँ उद्धृत करते हैं —

तिहारो का पावै प्रभु पार!

विपुल सृष्टि नित नव विचित्र के चित्रकार आधार॥
मकरी के सम, जगत जाल यहि, सृजत और बिस्तारत।
कौतुक ही में हरत ताहि पुनि, वेद पुरान उचारत॥
जग में तुम औ तुम में सब जग 'वासदेव' अभिराम।
सकल रंग तन बसत आप के–याही सो घनश्याम॥

परम-पुरुष तुम प्रकृति-नटी संग-लीला रचत अपार ।
जग व्यापन सों विष्णु कहावत-अचरच तउ अविकार ॥
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ज्ञान ।
'सत्य' क्षितिज सम तरसावत नित विश्वरुप भगवान ॥

दया ऐसी कीजे भगवान ।
जासो हिन्दू जाति करै सब-प्रेम गंग असनान ॥
सीतल रस परसत बस या कौ हीतल ताप बिनासै ।
हरे सघन-कलिकलुष आवरन पावन भाव विकासै ॥
जब जातीय अभ्युदय सूरज-प्रतिभा प्रभा जगावै ।
निज कर चंचल तार तरगनि-छेड़ि हृदय लहरावै ॥
तब हिन्दी भाषा मे हम सब मिलि भैरवी अलापै ।
चरचै कर्म योग चन्दन की तिलक अनूपम छापै ॥
विलसे मोद लसे नित नव से-आत्म भाव सचारै ।
धर्म ध्वजा गहि जगत मनोहर सत शिक्षा विस्तारैं ॥

—:o:—

कमल नयन, भुजंग शयन सुजन अभयकारी ।
करुणामय दीनबन्धु, पावन प्रिय प्रेम सिन्धु ।
भक्तन मन मोद भरन-सतत सौख्यकारी ॥
असरन जन निरत सरन-दारिद दुख द्वंद्दरन ।
मंजुल मर्याद थाप-सुभ स्फूर्तिकारी ॥
जग जागृति मूल आप-उन्नति कर हरत ताप ।
रचि रचि साधन अनूप-प्रबल शक्तिधारी ॥

सब विधि तुम पितुस्वरूप-अखिल विश्वभव्यभूप
तजिकें सब भेद भाव-जग के उपकारी ॥
जागै अरु जगमगाय-नव जीवन 'सत्य' पाय।
सकल भारतीय जाति-विनय ये हमारी ॥

—:०:—

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी मोर पखा सिर पै लहरै।
अलवेलि नवेलिन बेलिन में नवजोवन जोति छटा छहरैं ॥
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली सरसों सुभ पीत पटा फहरैं।
रसवंत विनोद अनंत भरे ब्रजराज बसन्त हिये बिहरैं ॥

शरद

बोरत प्रेम पयोनिधि में-ऋतु शारदी आई दया निज जोरत।
टोरत फोरत ग्रीषम को बल-बारिद को बल तोरत मोरत।
लोरत खंजन पै सतिदेव जू-छोरत कांस में साँस बहोरत ॥
चोरत मंजु चितै चित चायनि-चाँदनी चारु पियूष निचोरत ॥

—:०:—

विज्ञान

बिमल बीज सों अंकुर, अंकुर सों द्वै दल नव।
द्वै दल सों पौधा, प्रिय-पौधा सों द्रुम अभिनव ॥
द्रुम सों नव-पल्लव, पल्लव सों कली सुहावन।
कली भली सों कुसुम रुचिर बिकसत मनभावन ॥

पुनि कुसुम-कोष, सो होत फल-कारण कर्म समान है।
जो प्रगटत यह जग सत्य सो बन्दनीय विज्ञान है॥

—:o:—

रामनाम

मंगल करन कलिमल को हरन हार
पावन को पावन सुहावन ललाम है।
ब्रह्मपद पावन को जो कोऊ पथिक वर,
ताको मग टोसा प्रान पोसा सुखधामहै॥
कवि वर वै नविसराम ऐन एक चारु,
जगत सजन जन जीवन मुदाम है।
धरम विटप बीज सतत तिहारो लसै,
भूति प्रद मग अभिराम राम नाम है॥

—:o:—

पौन की सनक, घन सघन ठनक चारु,
चचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है।
बादर की कड़ी झड़ी लागी चहुँ ओरन से,
बोलत पपैया पीउ पीउ प्रण पाली है॥
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत,
दीरघ अवाज वाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात बात खात हरखात गात,
धोए धोए पातन की बात ही निराली है॥

—:o:—

कैसे करों, मग चालत में,
ये निपूतो कुनूपुर आँगुरी चाँपै ।
सत्य जू आगें धरौ परै पीछे,
जु हाय परी कहा बोजुरी पाँपै ॥
ब्यारि उड्यो यह अंचल बावरौ,
चचल चौंकि दृगचल ढाँपै ।
गोहरी गेहरी वीर धसौ, किमि,
देहरी चाढ़त देहरी काँपै ॥

—:o:—

झूमत ज्यो मतवारो मतग,
सो प्रेम की बेलि को होय न चेरो ।
ज्ञान को आंकुस मानत ना,
मन मोह कुपथ सों जात न फेरो ॥
'सत्य' जितै है तितै चलि जात है,
ठीक न ठाक कछू यहि केरो ।
कै करुणा कर बाँह गहौ,
कि कहौ करुणानिधि नाम न मेरो ।

—o—

सुखकारक, दारक दारिद के,
औ निबारक जो भव फंदन के ।
छल छारक जारक जालन के,
पुनि टारक जो दुख द्वंद्वन के ।

भय हारक कारक काज सबै,
सु प्रसारक प्रेम के बंधन के।
रहु रे मन तू पद पङ्कज में,
वृषभान सुता नँदनन्दन के।

—०—

ब्रज-भाषा

भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन।
पै रस पूर्व कभूमंडल ब्रजमंडल मन भावन॥
परम पुण्यमय प्रकृति छटा यह विधि बिथुराई।
जग सुर मुनि नर मंजुजासु जानत सुघराई॥
जिह प्रभाव-बस नित नूतन जलधर शोभाधरि।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि॥
श्रीपति पद्पंकज रज परसत जो पुनीत अति।
आइ जहां आनन्द करति अनुभव सहृदय मति॥
जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्द पानहित।
मुनि मन मुदित मलिन्द-निरन्तर विरमत जहँनित॥
तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी।
भोरे भारे बसत नेह विकसत ब्रजवासी॥
जिनके उच्च उदार भाव-गिरिसों जग आसा।
जनमी तारनि तरनि कलिन्दिनि यह ब्रज भासा॥

जासु सरस निरमल जगजावन जीवन मांही।
लखियत उज्जल सुरचद की नित परछाहीं॥
जिन प्रकास सों औरु प्रकासित सुंदर लहरी।
नित्त नवल रस भरी मनहरी बिलसत गहरी॥
जिह आश्रय लहि कलिमलहर तुलसा सौरभ यस।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम्म सुचि हरिजन-सरवस॥
केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम।
हरिश्चंद से जासु कूल कुसुमति रसालद्रुम॥
अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक निकंदन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबंदन॥
तुरत सकल भय हरनि आर्य जागृति जयसानी।
जन मन निज बस करनि लसति पिकभूषण बानी॥
बिबिध रंग रञ्जित मनरंजन सुखमा आकर।
सुचि सुगंध के सदम खिले अगनित पदमाकर॥
जिन परागसों चौंकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे।
रहसि रहसि रसखान रसिक अलिगुंज घनेरे॥
बरन बरन में मोहन की प्रति मूर्ति बिराजत।
अन्तर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत॥

॥ इत्यादि ॥

-:o:—

श्रीदेव्यास्तुति

नमस्ते धीरूपे अगति गतिरूपे अकपटी।
प्रिये आत्मारूपे चिर थिर स्वरूपे चटपटी॥
मनोहारी प्यारी कटि कलित सारी झुलपटी।
जुहैं ग्रस्ता व्याधी जग, तिनहिं मृत्युञ्जय वटी॥

(२)

रसीली सावित्री परम चसकीली सुखमयी।
भवानी कल्यानी सब हित सुधानी छविछयी॥
अनंते आधारे तब गुण पसारे गुणमयी।
वरे हस्ता वीणे अति अमल नारायणि नयी॥

(३)

अनोखी नौका तू भव उदधिसो पार करनी।
अपर्णे बाराही सकल भय की तू सुहरनी॥
महाविद्ये सौम्ये प्रकट सबकों मां निडरनी।
मृडानी सर्वाणी शिव-प्रणय-पात्री शिखरनी॥

—(इत्यादि)

मुद्राराक्षस से

कायर बुद्धि बिहीन भक्ति युत कौन काम कौ।
बुधि बिक्रम-संपन्न भक्ति-बिन नहिं छदाम को॥
जिन गुन संयुत उचित भक्ति प्रज्ञा औ बिक्रम।
ते सुख दुखमें स्वामिभक्ति बस और त्रियासम॥

—o—

जिह मंत्री रहे बलवान सुजान,
सुकीर्तिलता जिन छाई बिसेखी।
तिह जीयत नंद सवंस के जो,
थिर नाहि भई चलती अवरेखी।
वह चंचला चारु अचंचल है,
नृप चद्र गुप्त के अंक सुलेखी।
बस दूरि सकै करि को अब ताहि,
कहूं छुटो चंद्सो चांदनी देखी।

—०—

एकाकी स्वच्छंद समुज्वल जासु दान की धारा।
अभिमानी मद प्रबल सदा जो मनको करत अपारा॥
बांधि बुद्धि गुन-नृपल-हाथ सो बस तिहि लावो ऐसे।
अवत दान-जल मद उच्छृङ्खल वलीवन्य गज जैसे॥

—०—

प्रथम-भाग

समाप्त.

"श्रीसनाढ्यादर्श--ग्रंथ-माला" के स्थायी ग्राहकों के लिए

नियम

(१) प्रत्येक व्यक्ति ॥) आठ आना प्रवेश शुल्क भेज कर इस 'ग्रथ-माला' का स्थायी ग्राहक बन सकता है।

(२) स्थायी ग्राहको को 'ग्रथमाला' की पूर्व प्रकाशित तथा भविष्य मे प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य मे मिल सकैगी।

(३) पूर्व पुस्तको को लेने न लेने का अधिकार ग्राहको को होगा।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहको के पास भेजी जायगी। सूचना पत्र भेजने के पन्द्रह दिन पश्चात् पुस्तक वी० पी० द्वारा ग्राहको की सेवा मे भेजी जायगी जिन महानुभावो को किसी कारण वश यदि पुस्तक न लेना हो तो इसी समय के भीतर सूचना देने की कृपा करै अन्यथा वी० पी० वापिस आने पर उनका नाम स्थायी-ग्राहक-श्रेणी से काट दिया जायगा। हाँ यदि वी० पी० न छुड़ाने का कोई यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० व्यय (दोनो ओर का) देना स्वीकार किया तो उनका नाम फिर ग्राहक श्रेणी मे लिख लिया जायगा।

'ग्रन्थ-माला' का उद्देश्य

सत्साहित्य और जातीय इतिहास द्वारा मातृ भाषा और जातिकी सेवा करना इस "ग्रन्थ-माला" का एकमात्र उद्देश्य है।

'ग्रंथ-माला' की विशेषताएँ

(१) प्रचार की सुविधा के लिए 'माला' की सभी पुस्तकों का मूल्य लागत मात्र ही रक्खा जायगा।

(२) छपाई की सफाई आदि बातों की ओर पूर्णरूप से ध्यान रक्खा जायगा।

(३) इतना कम मूल्य होते हुए भी भरपूर प्रचार की ओर ध्यान रखते हुए, १०० या इससे अधिक पुस्तके एक साथ लेनेवाले महाशयो को २५) सैकडा कमीशन भी दिया जायगा।

व्यवस्थापक—
श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रन्थ-माला
कालपी Kalpi U P

एक अभिलाषा

विदित हो कि इस 'ग्रंथ-माला' के निकालने मे आर्थिक लाभ नही, केवल इतिहास की रक्षा और साहित्य के प्रचार ही के लिये ऐतिहासिक और साहित्यक पुस्तको को इस 'ग्रंथ-माला' द्वारा प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई है। 'सुकवि-सरोज' (प्रथम-भाग) प्रस्तुत 'ग्रथ-माला' का प्रथम पुष्प है, इस प्रकार इसके पाच सात भाग निकालने का हमारा विचार है।

आशा है कि इस 'ग्रंथ-माला' से हिन्दी भाषा भाषियो तथा हमारे स्वजाति भाइयो को बहुत कुछ लाभ होगा और वे हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसके भरपूर ग्राहक बनाकर मातृभाषा और जाति-सेवा के कार्य्य मे मुझे भरपूर सहयोग देने की कृपा करेगे।

यहाँ मै अपने निम्नलिखित मित्रो को, जिन्होने कि मेरी प्रार्थना पर प्रस्तुत पुस्तक के ग्राहक बनाकर तथा प्रचार के लिए स्वयं इसको अधिक सख्या मे प्रतियाँ लेने के वचन देकर अनुगृहीत किया है, हार्दिक धन्यवाद देता हूँ—

१-श्री० प० रामगोपाल जी मिश्र बी० एस सी० डिपुटीकलेक्टर उरई — ५०) दिए ७० प्रतियोंकेलिए

२-श्री० प० कविकुमार भद्रदत्तजी त्रिवेदी कासगञ्ज — ५) भेजके २५

३-श्री० पं० शिव सहाय जी वैद्य बाबई उरई २५ प्रतियोके लेनेके लिए वचन दिया

४-श्री० पं० जमुनाप्रसाद जी गोस्वामी 'साहित्यरत्नाकर' जबलपुर

५-श्री०प०परमानन्दजी मिश्र चौगरी झाँसी २५प्रतियोंके लेनेकेलिए वचन दिये
६-श्री०प०पन्नालालजी तिवारी गोरामछिया झाँसी ” ” ”
७-श्री०प०मुरलीधर जी उपाध्याय वैद्यभषण झाँसी ” ” ”
८-श्री०प०गणेशप्रसादजी चौबे छतरपुर ११ ” ” ”

—०—

इसके अतिरिक्त श्री०प०जीवारामजी दीक्षित मंत्री श्रीसनाढ्य महामण्डल आगरा, श्री० प० रामचरण लाल जी बुधौलिया सभापति बुन्देलखण्ड प्रान्तीय सनाढ्य मण्डल श्री०, प० यमुना-प्रसादजी देहुलिया मत्री मध्य प्रान्तीय सनाढ्य मण्डल, तथा श्री० प० सच्चिदानद जी उपाध्याय भी भरपूर सहयोग देने की कृपा कर रहे हैं। और भी कतिपय महानुभाव ग्राहक बनाने तथा प्रचार के लिए प्रयत्न कर रहे हैं यद्यपि स्थानाभाव के कारण मै उन सब के नाम प्रकाशित कर सकने मे असमर्थ हूँ किन्तु हृदय से उन सब का अति ही अनुगृहीत और आभारी हूँ।

आशा है भविष्य में और भी सहृदय बधु इन महानुभावो का अनुकरण कर अपने परम सहयोग से मुझे बाधित करने की कृपा करेगे। जिससे इस 'ग्रथ माला' का घर घर मे प्रचार हो, यही अभिलाषा है—

व्यवस्थापक-
"श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रंथ-माला"
कालपी
Kalpi U P.

के द्वितीय और तृतीय भाग मे संगृहीत, कुछ सुकवियो की

नामावली

(१) श्री० पं० राधालाल जी गोस्वामी
(२) ,, , रामरतन जी गुबरेले 'रत्नेश'
(३) ,, , साहित्यरत्न अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'
(४) ,, , सेतूलाल जी बिलघरे
(५) ,, ,, दशरथ दुबे सिद्धांत बागीश
(६) ,, ,, दिवाकरदत्त शास्त्री
(७) ,, ,, देवकीनन्दन मिश्र
(८) ,, ,, कविरत्न अखिलानन्द पाठक
(९) ,, ,, रघुबरदयाल चचोंदिया
(१०) ,, ,, विद्यावाचस्पति शालग्राम तिवारी
(११) ,, ,, गणेशप्रसाद चौबे
(१२) ,, ,, गोकुलचन्द्र शर्मा बी० ए०
(१३) ,, ,, रामगोपाल मिश्र बी० एस० सी०
(१४) ,, ,, ब्रह्मदेव मिश्र शास्त्री
(१५) ,, ,, साहित्यरत्न बाबूराम बित्थरिया 'नवीन'
(१६) ,, ,, चतुर्भुज पाराशर

(१७) श्री०प० कविकुमार भद्रदत्त त्रिवेदी
(१८) ,, ,, मुकुन्दहरि द्विवेदी शास्त्री
(१९) ,, ,, श्रवणप्रसाद मिश्र
(२०) ,, ,, सच्चिदानन्द उपाध्याय
(२१) ,, ,, 'साहित्य-रत्नाकर' जमुनाप्रसाद गोस्वामी
(२२) ,, ,, लक्ष्मीचन्द्र श्रोत्रिय
(२३) ,, ,, गोबिन्ददास व्यास
(२४) ,, ,, ब्रजकुमार मिश्र 'श्रीकर' 'विद्यालंकार'
(२५) ,, ,, घासीराम व्यास
(२६) ,, ,, देवीराम शर्मा "दिव्य"
(२७) ,, ,, रोशनलाल शर्मा
(२८) ,, ,, बालहरि दुबे

—०—

हमारी अन्य पुस्तकें

श्रीमद्भगवद्गीता का छंदोबद्ध अनुवाद—

संस्कृत साहित्य मे श्रीमद्भगवतगीता ही एक ऐसा ग्रंथ है जो सब से उत्तम और उपयोगी है। आर्यों का यही एक सर्वोत्तम ग्रन्थ है, इसकी अधिक प्रशसा करना सूर्य्य को दीपक दिखाना है अत यदि श्रीकृष्ण भगवान के उपदेश सरल भाषा मे आप जानना चाहते हों, यदि अपनी आत्मा और अपनी सन्तान का उद्धार आप चाहते हो, तो इस ग्रन्थ को अवश्य मँगाकर तथा पढ़ कर जीवन सुफल बनाइए। अनुवाद बड़ा ही सरस, सरल और मनोहर हुआ है फिर भी मूल्य केवल ।।=) दश आना।

सावित्री सत्यवान—पौराणिक कथा का कविता मे मनोहर वर्णन, पुस्तक बड़ी ही शिक्षाप्रद है और प्रत्येक स्त्री पुरुष को पढ़कर इससे लाभ उठाना चाहिए मूल्य केवल ।) चार आना ।

पद्य-प्रभाकर-(प्रथम भाग)-समय समय पर मासिक पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित सामयिक उपदेशप्रद पद्यो का संग्रह, छपाई सफाई देखकर और पुस्तक पढ़कर मन मुग्ध होजाता है फिर भी मूल्य केवल ।) चार आना

रामायण के कुछ उपदेश-रामायण के कुछ विशेष उपदेशप्रद स्थलो का कविता मे वर्णन पुस्तक पढ़ने योग्य है मूल्य केवल =) आना

शिवताण्डव स्तोत्र—संस्कृत से सरल हिन्दी भाषा के छन्दो मे अनुवाद, भाव को समझ कर पाठ करने मे दूना आनन्द आता है । अत मे शिवाष्टक भी है मूल्य-) एक आना

फिर भी 'श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रथ-माला' के स्थायी ग्राहको को उपरोक्त सभी पुस्तके एक साथ मँगाने से आधे ही मूल्य में प्राप्त हो जासकती है । 'माला' के ग्रथो के प्रचार के लिए ही यह विशेष रियायत की गई है—आशा है हिन्दी भाषा भाषी सज्जन इससे समुचित लाभ उठायेगे—

पत्रव्यवहार का पता:-
व्यवस्थापक

"श्रीसनाढ्यादर्श-ग्रन्थ-माला" कालपी

Kalpi U P

नोट—उपरोक्त पुस्तके निम्नलिखित पते पर भी प्राप्त हो सकती है ।

पं० परमानन्द मिश्र चौधरी हार्डीगंज